भूमिका

हिंदी साहित्य मे आधुनिक युग के लेखको मे प्रेमचन्द सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक है—न केवल अपने ही प्रात और देश मे वल्कि विदेशो में भी । विदेशो में उनकी लोकप्रियता कुछ पाठको तक ही सीमित नही है, वड़े-वडे विद्वान् भी उनकी कृतियो का अनुसन्धानात्मक रूप में अध्ययन कर रहे हं और उस अध्ययन के द्वारा वे भारत की राजनैतिक और सास्कृतिक प्रगति से परिचित होने की सतत चेष्टा कर रहे हैं । जैसे-जैसे हम अन्य देशो से घनिष्ट सम्पर्क वढाते जायेंगे और अपने साहित्य को अन्य उन्नत देशो के साहित्यो के स्तर पर उठाने का प्रयत्न करते जायेंगे, वैसे वैसे अपने महान् साहित्य-स्रष्टाओ की रचनाओं का पुनः पुन· मूल्याकन करने को विवश होते जायेंगे। 'प्रेमचन्द और उनकी साहित्य साधना' अपने एक विश्वविख्यात साहित्य स्रष्टा का ऐसा ही मूल्यांकन है ।

प्रमचन्द पर वहत सी पुस्तके निकली है पर अधिकाश पुस्तको मे कथाकार अर्थात् उपन्यास और कहानी लेखक प्रमचन्द की ही आलोचना मिलेगी । केवल डाक्टर रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनका युग' में उनके अन्य साहित्य पर अवश्य प्रकाश डाला है परन्तु प्रेमचन्द के नाटको पर उन्होने भी विचार नही किया । यो प्रेमचन्द पर लिखी अव तक की पुस्तको से पूरे प्रेमचद का स्वरूप स्पष्ट नही होता । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचद के आलोचको ने उनकी शेष रचनाओ को विशेष महत्व नही दिया । नाटको को तो स्पष्ट ही उन्होने गहन उपेक्षा की

दृष्टि से देखा है । जिस लेखक ने देश विदेश मे ख्याति प्राप्त की हो उसको पूरी तरह मे समझने के लिये यह अनिवार्य है कि उसकी हर एक रचना की छानवीन की जाय । हमने 'प्रेमचद का अन्य साहित्य' शीर्षक से उनके नाटको और अन्य रचनाओ पर विस्तार से विचार किया है । एक दृष्टि स देखे तो इस पुस्तक से पूरे प्रेमचद की कल्पना हो जाती है । हम को पग-पग पर विस्तार-भय से अपने को सयत करना पडा है, इसलिये कृतियो की आलोचना में संकेतात्मक पद्धति से काम लिया गया है । इतना होने पर भी अस्पप्टता कही-नही आने पाई, यह इस पुस्तक की दूसरी विशेपता है। इस विषय मे और कुछ न कह कर हम इतना ही निवेदन करना चाहते है कि प्रेमचद और उनके साहित्य की विशालता को समझने में यह पुस्तक यदि तनिक भी उपयोगी हुई तो हम अपने प्रयत्न को सफल समझेंगे ।

प्रेमचद पर लिखी गई सभी महत्वपूर्ण पुस्तको और पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित लेखो से हमने लाभ उठाया है । यो तो उनका उल्लेख हमने बराबर किया है पर यहाँ एक बार फिर हम उनके लेखको के प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करते है ।

हमें आशा है, जिस उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है, उसमें इसे अवश्य सफलता मिलेगी । विद्वानो के सहृदयतापूर्ण सुझावो का स्वागत करने को हम सदैव तत्पर रहेंगे ।

हिन्दी-विभाग
आगरा कॉलिज
आगरा

विनीत
पद्मसिह शर्मा 'कमलेश'

विषय-सूची

प्रेमचन्द से पूर्व कथा-साहित्य

कथा-कहानी का जन्म मनुष्य के जन्म के साथ ही हुआ है क्योंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है और वह अपनी सुख-दुःख की कहे-सुने बिना रह नही सकता । यही कारण है कि विश्व के साहित्य मे आरंभ में धार्मिक और नैतिक उत्थान के लिये कहानियों के माध्यम से ही तत्त्व की बाते कही गई हैं । बाइबिल, कुरान, वेद, रामायण, महाभारत, आदि धर्म-ग्रंथो का महत्त्व केवल धार्मिक उपदेशो के कारण ही नही है, उन में बिखरी हुई अनेक कहानियो के कारण भी है जो जीवन की विभिन्न समस्याओं के समाधान का प्रयत्न करती जान पड़ती है । वस्तुत. कहानी का सब से बड़ा गुण मनोरंजन के माध्यम से उपदेश देना होने से उस का अस्तित्व हर स्थान पर पाया जाता है । लेकिन ये कहानियाँ अद्भुत तत्त्व और कल्पना की उडान से परिपूर्ण हैं । जिन पर अविकसित समाज का मनुष्य सहज ही विश्वास कर लेता था । वह यह शंका नही करता था कि ऐसा कैसे हो सकता है । उस का लक्ष्य भी उस की सत्यता-असत्यता का निर्णय करना न था । वह तो केवल उस से निकलने वाले निष्कर्ष पर ही दृष्टि रखता था ।

समाज में जब तक सामंती व्यवस्था रही, तब तक किसी न किसी रूप मे ऐसी ही कहानियो का प्रचार रहा, फिर भले ही कहानियाँ पद्य मे ही क्यो न कही गई हो । हिंदी साहित्य में वीर-गाथा-काल के प्रबन्ध-काव्य, तुलसी का रामचरित-मानस और जायसी का पद्मावत मूल मे कहानियाँ नही तो और क्या है ? मुगल शासन में राजदरबारो मे शायरो की तरह किस्सागो भी रहते थे, जो नाना प्रकार की काल्पनिक

कहानियाँ सुना कर अपने आश्रयदाता का मनोरजन किया करते थे। कालिदास ने 'उदयन तथा कोविद वृद्ध' लिख कर जिन उदयन की कथा सुनाने वालो की ओर सकेत किया है उन के वशज आज भी गाँव म आग तापते हुए अलाव के चारो ओर बैठे देर तक कहानियाँ सुनाते हुए अपने छोटो और समवयस्को का मनोरजन करते है। इशा-अल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' जो हिंदी की सब से पहली कहानी मानी जाती है, इन्ही कहानियो के आधार पर खडी है। अग्रेजो के आगमन के पश्चात् मुद्रण-यत्र की सुविधा के कारण आरभ म जो कथा साहित्य मिलता है वह अपनी प्रेरणा इन्ही कहानियो से ग्रहण करता प्रतीत होता है। हिंदी गद्य के चार आचार्यो मे से इशा-अल्लाखाँ को छोड कर शेष तीन मे से सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' अपनी पौराणिकता के बावजूद लोक प्रचलित कथाओ की शैली पर ही लिखा गया है। और तो और लल्लूलालजी के 'प्रेमसागर' ने एक समय मे जो घर-घर 'रामचरित-मानस' का सा महत्त्व प्राप्त कर लिया था उस का कारण भी उस की कहानी जैसी रोचकता ही है। वे कहानियाँ, जिन के आधार पर हिंदी गद्य में प्रथम आचार्यों ने अपनी रचनाये लिखी, मौखिक रूप से पीढी-दर-पीढी चली आ रही थी। अब जब कि छापेखाने की सुविधा मिली और सार्वजनिक रूप से शिक्षा का प्रचार हुआ तो उन्हो ने भी अपने को पुस्तकाकार बाजार में ला खडा किया। 'सिहासन बत्तीसी' 'वैताल पच्चीसी', 'सुआ सत्तरी', 'गुलबकावली', 'छबीली भटियारिन', 'मारगा सदा वृक्ष', 'किस्सा तोता मैना', 'किस्सा साढे तीन यार', 'चहार दरवेश', 'बागो बहार', 'किस्सा हातिमताई', 'दास्तान अमीर हमजा', 'तिलस्म होशरुबा', आदि हिंदी और उर्दू लिपि में साधारण

पढी-लिखी जनता का वैसे ही मनोरजन करने लगी, जैसे साहित्यिक रचनाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का मनोरंजन करती हैं। यही क्यों आज भी यदि बिक्री की दृष्टि से देखा जाए तो इन की बिक्री के मुकाबले साहित्यिक रचनाओ की बिक्री नगण्य है। यह साहित्य बड़ी-बडी शानदार अलमारियो मे बन्द रह कर नही बिकता और न उसे बडी बड़ी इमारतो में स्थापित पुस्तकालयो में ही रखा जाता है। यह तो फुटपाथ पर बिकने वाला साहित्य है। इतना होने पर भी उन मे कुछ ऐसा तत्त्व है, जो हमारी जनता को अब तक आकृष्ट करता आया है। उस की अश्लीलता की लाख बुराई हुई है पर फिर भी वह अपना प्रभाव जमाये हुए है। बात यह है कि इन मे जिन चरित्रो का वर्णन है वे अनेक बातो मे हमारे समान हैं। 'किस्सा तोता मैना' को ही लीजिए। जिस मे स्त्री-पुरुष की कुटिलता को वाद-विवाद के द्वारा बताया गया है। तोता स्त्री की कुटिलता बताता है और मैना पुरुष की। उस जनता को जो अशिक्षा के अन्धकार मे शताब्दियो से भटक रही है और नारी या पुरुष के वैज्ञानिक विश्लेषण से कोसो दूर है, इस कथा में रस आये तो कोई बेजा नही है। फिर इन मे मानव-चरित्र की गुत्थियों का जमघट नही है, जिस के लिये दिमागी कसरत करनी पडे। यह तो सीधी-साधी भाषा में मानव जीवन की सामान्य विशेषताओ पर प्रकाश डालती है इस लिये उन का प्रभाव सीधा पड़ता है। ये लम्बी कहानियाँ या उपन्यास हमारे साहित्यिक उपन्यासों के पूर्वज हैं। यही कारण है कि आरभ में जो साहित्यिक उपन्यास लिखे गये हैं उन पर इन की गहरी छाया है।

इस से पूर्व कि हिंदी कथा साहित्य पर विचार किया जाय यह कह देना आवश्यक है कि कथा-साहित्य मे युग का

प्रतिविम्व जितनी विशदता से व्यक्त किया जा सकता है, उतना अन्य किसी साहित्यिक विधा में नही । यही कारण है कि आज के वैज्ञानिक युग में, जव कि जीवन की जटिलता वरगद की जटाओ की तरह वढ गई है, उपन्यास ही महाकाव्य का स्थान ले कर साहित्य के सिहासन पर सुशोभित हो गया है । जीवन की वहुमुखी गति-प्रगति के चित्रण का अवकाश उपन्यास में इस लिये अधिक रहता है कि उस मे कथा, कल्पना, भाषा आदि का सतुलन वनाये रखना अपेक्षाकृत अन्य साहित्यिक विधाओ के अनिवार्य-सा हो उठता है । इधर तो उस में सूक्ष्मता और गहराई भी विशेष आ चली है । आरभ में जव उपन्यास लिखे गये तव हमारे देश में राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल हो रही थी । सन् १८५१ के वाद से अग्रेजो की नीति मे जो परिवर्तन हुआ उस के फलस्वरूप हमारे समाज में दो प्रकार की विचारधारायें घर कर गई । एक के अनुसार अग्रेजो की सस्कृति भारतीय सस्कृति से उच्च थी और उस का अनुकरण ही श्रेयस्कर था तो दूसरी की दृष्टि से समाज में अनैतिक और आर्थिक पतन का मूल कारण ही अग्रजो की भाषा और रीति-नीति थी । अग्रेजो ने छापेखाने, रेल, तार, डाकखाने आदि की सुविधाये दी थी पर हमारे उद्योग-धन्धो को नष्ट कर हमारी शक्ति को भी हर लिया था । यो उस समय राजभक्ति और देश भक्ति दोनो की प्रधानता थी । भारतेन्दु ने 'अग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी, पै धन विदेश चलि जात इहें अति ख्वारी' में इसी द्वन्द्व की अवस्था को व्यक्त किया है, परन्तु यह सौभाग्य की वात है कि अग्रेजो के गुप्त शोषण ने भारतीयो को चिरकालीन मोह निद्रा से जगाया ही अधिक था । अग्रेजी सभ्यता और सस्कृति का जो तीव्र प्रभाव भारतीय सभ्यता और सस्कृति पर पड़ा तो अपनी रक्षा के लिये

भारतीय कटिबद्ध हो गये। समाज ही किसी राष्ट्र की आधार-शिला है। उसी की रक्षा राष्ट्र की रक्षा है। अतः भारत में चारो ओर समाज सुधार के आन्दोलन चले। पूर्व मे ब्रह्म-समाज, पश्चिम में प्रार्थना-समाज और मध्य देश मे आर्य-समाज के आन्दोलन ऐसे ही आन्दोलन थे। इन सब की टक्कर सनातन धर्म से थी। इनमें हिन्दी क्षेत्र में आर्य-समाज के आन्दोलन का ही बोलबाला रहा। आर्यसमाज ने उन सब कामो की भूमिका तैयार की जो आगे चलकर राष्ट्रीय महासभा कॉंग्रेस ने अपनाये। स्त्रियो के सम्मान का प्रश्न, गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली, स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग, मातृभाषा का उत्थान, देश की दुर्दशा और आर्थिक हीनता पर ग्लानि, जातीय एकता की भावना आदि को लेकर आर्य-समाज ने मृतप्राय हिंदू जाति मे प्राण फूँक दिये। एक प्रकार से आर्यसमाज ने सामाजिक उत्थान के द्वारा अग्रेजो के राजनीतिक शोषण का ही विरोध किया था। वह इस समय हमको अपनी कट्टरता या सकीर्णता के कारण पुनरुत्थान-वादी या प्रतिक्रियावादी लग सकता है पर उस समय उसकी मूल-ध्वनि भारतीयता के सच्चे स्वरूप को सामने रखने की थी और गुलामी के शिकंजे में कसे देश के लिये उस समय इससे अधिक और कुछ हो भी नही सकता था। अस्तु--

हिन्दी का पहला उपन्यास परीक्षा गुरु (सन् १८८२) जब निकला तब हमारे देश में पाश्चात्य प्रभाव के विरुद्ध भावना उभर रही थी। इस उपन्यास के लेखक श्री श्रीनिवास-दास हिंदी के प्रसिद्ध नाटककार भी थे। उन्होने अपने इस उपन्यास में अपने युग को सामाजिक दशा का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। इसमे एक मध्यवर्गीय व्यापारी का चित्र है जो अग्रेजी शिक्षा प्राप्त मध्यवर्ग की बुराइयों से जकड़ा हुआ है। अग्रेजो की नकल करने वाले उस व्यापारी

का बुरी सगत से पतन और अपने एक हितैषी मित्र की सहायता से उसका उद्धार इा उपन्यास की कथा का सार है। इसमें नवीन और प्राचीन विचारो का सघर्ष भली प्रकार दिखाया गया है। उपन्यास यद्यपि सामाजिक है पर देश की दशा के ऊपर उसमें अच्छा प्रकाश डाला गया है। हिंदुस्तान के पतन का कारण एकता की कमी है। युग की समस्याओ के प्रति जागरूक इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र व्रज-किशोर कहता है—"जब तक हिंदुस्तान में और देशो से बढकर मनुष्य के लिये वस्त्र और सब तरह के सुख की सामग्री तैयार होती थी, रक्षा के उपाय ठीक-ठीक बन रहे थे। हिन्दुस्तान का वैभव प्रतिदिन बढता जाता था, परन्तु जब से हिंदुस्तान का एका टूटा और देशो में उन्नति हुई, भाफ और बिजली आदि की कलो के द्वारा हिंदुस्तान की अपेक्षा थोडे खर्च, थोडी मेहनत, और थोडे समय मे सब काम होने लगा, हिंदुस्तान की घटती के दिन आगये।"

परीक्षा गुरु से पहले आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'पूर्ण प्रभा चन्द्राकाश' नामक एक मराठी उपन्यास का अनुवाद प्रकाशित कराया था, जिसमे सामाजिक समस्याओ पर प्रकाश डाला गया था। स्वय भारतेंदु ने 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' के रूप में अपनी आत्म-कथा लिखने का प्रयत्न किया था जो अधूरा रह गया। कुछ लोग इसे हिंदी कथा साहित्य की प्रारम्भिक कृति होन का गौरव देते है, पर अग्रेजी ढग का पहला मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' ही है।

परीक्षा गुरु से सामाजिक, और नैतिक उत्थान के उद्देश्य से लिखे जाने वाले उपन्यासो की जो परम्परा चली उसमें

कितने ही साहित्य महारथियो ने योग दिया । यद्यपि उनमे श्रीनिवासदास की सी कला कुशलता और दृष्टि नही, फिर भी एक वार जो धारा आरम्भ हुई थी उसे बहुत दूर तक वे लोग ले गये । श्रीनिवासदास के वाद इस धारा को जिन लोगो ने अपनी कृतियो से गतिशील वनाया, उनमे प० वालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्णदास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

पं० वालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान' दो उपन्यासो की रचना की । पहली रचना मे एक युवक क सदाचरण द्वारा एक डाकू का सुधार होना दिखाया है और दूसरी रचना द्वारा दो धनी व्यापारियो का कुसगति से पतन और एक मित्र द्वारा उनका उद्धार होना वताया है । पहले उपन्यास का उद्देश्य छात्रो के जीवन का उत्थान है तो दूसरे का सामाजिक बुराइयो के दुष्परिणाम का प्रदर्शन । दूसरे उपन्यास की कथावस्तु 'परीक्षा गुरु' से वहुत कुछ मिलती है । उसका कथानक सुगठित है और भाषा पात्रो के अनुकूल है । यथार्थ चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास प्रेमचन्द के मार्ग को प्रशस्त करने वाला है । राधाकृष्ण दास ने 'निस्सहाय हिन्दू' नामक एक उपन्यास लिखा । यह उपन्यास वालकृष्ण भट्ट या श्रीनिवासदास के उपन्यासो से भिन्न कोटि का है । इसमे दो मित्र गो-वध वन्द करने का आन्दोलन करते हे और एक मुसलमान उनका साथ देता है । कट्टर पथी मुसलमान नाराज होते हं और अन्त मे वे परस्पर लड़ पडते है । जिसमें दोनों ओर के लोग मारे जाते है । इसका अत दु खद है । इसकी भाषा वड़ी प्राजल और गठी हुई है । वर्णन-शैली में लेखक का सूक्ष्म-निरीक्षण और अभिव्यक्ति

क्षमता प्रकट होती है। श्री अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' नामक दो उपन्यास लिखे। उनके पहले उपन्यास का लक्ष्य ठेठ भाषा के प्रयोग में सफलता प्राप्त करने का था पर उसमे अनमेल विवाह का दुष्परिणाम भी दिखाया गया है, जिससे वह सामाजिक-नैतिक उपन्यासो की एक कडी बन गया है। 'अधखिला फूल' भी एक सामाजिक उपन्यास है। इसका सम्बन्ध ग्राम्य जीवन के उस पहलू से है, जो भूत-प्रेत और काली माई के प्रति विश्वास से ही जीवन के चक्र का सचालित होना मानता है। प्रकृति चित्रण इनके उपन्यासो की जान है। श्री लज्जाराम मेहता ने सख्या की दृष्टि से अपने पूर्व के इन लेखको की अपेक्षा कही अधिक उपन्यास लिखे है। कथावस्तु में कोई नवीनता नही रही। उन्होने 'धूर्त रसिक लाल', 'स्वतन्त्र रमा परतन्त्र लक्ष्मी', 'आदर्श दम्पति', 'विगडे का सुधार', 'आदर्श हिदू' आदि उपन्यास लिखे। इन उपन्यासो के नामो से ही यह प्रकट है कि ये समाज सुधार की भावना से लिखे गये है। इनमें कही व्यग से और कही सीधे समाज की कुरीतियो पर दृष्टिपात किया गया है। इनके अतिरिक्त ठाकुर जगमोहनसिह ने 'श्यामा स्वप्न' और प० अम्बिकादत्त व्यास ने 'आश्चर्य वृत्तान्त', नामक उपन्यास सस्कृत कथा-आख्यायिकाओ के ढग पर लिखे। यद्यपि इनमें सामाजिक-नैतिक लक्ष्य उपदेशात्मकता के रूप में प्रदर्शित नही है तथापि है ये भी सामाजिक। 'श्यामा स्वप्न' से प्रेम और विवाह सम्बन्धी कठोर रूढियो के प्रति तत्कालीन लोगो की विरोध भावना का पता चलता है। इसकी भाषा अलकृत है और स्थान-स्थान पर कवित्व की छटा है। प्राकृतिक सौदर्य के चित्र

बड़े आकर्षक है । 'आश्चर्य वृत्तान्त' में एक व्यक्ति स्वप्न मे गया से काशी होते हुए चित्रकूट की यात्रा करता है, जिसे मार्ग मे अनेक वन-पर्वत पार करने पड़ते है। अलौकिक और विस्मयपूर्ण दृश्यो की योजना और अलकृत भाषा के साथ-साथ कही-कही समाज की यथार्थ दशा का भी चित्र अकित किया गया है । इन सब उपन्यासकारो की रचनाओ मे अनेक दोष हैं । अतिप्राकृत प्रसगो का समावेश है, भाषा का अनावश्यक अलंकरण है, कथावस्तु की शिथिलता है तथा लम्बे-लम्बे वर्णन हैं, पर समाज-सुधार की जिस भावना से ये लिखे गये है, वह उन के द्वारा अच्छी तरह व्यक्त हो जाती है। श्री बाल-कृष्ण भट्ट, श्रीनिवासदास और राधाकृष्णदास मे तो सामाजिक यथार्थ का वैज्ञानिक रूप भी प्रकट हुआ है।

समाज-सुधार की भावना से लिखा गया 'परीक्षागुरु' उपन्यास सन् १८८२ में प्रकाशित हुआ था । उस से उपदेश-प्रधान उपन्यासो की जिस परपरा का जन्म हुआ वह काफी दूर तक आगे चली अवश्य, पर उस की गति में बाधा डालने के लिये एक नये प्रकार के उपन्यासो का जन्म भी साथ ही हुआ। सन् १८८१ ई० से काशी के एक व्यवसायी श्री देवकीनन्दन खत्री (१८६१-१९१३) ने केवल जन-रुचि को सतुष्ट करने के लिये तिलस्मी और अय्यारी के उपन्यास लिखे । इन्हों ने 'चन्द्रकान्ता' ४ भाग, 'चन्द्रकान्ता सन्तति' २४ भाग, 'नरेन्द्रमोहिनी' ४ भाग और 'भूतनाथ' १८ भाग तिलस्मी और अय्यारी उपन्यास लिखे । इन मे से अंतिम उपन्यास वे अधूरा छोड गए थे, जिसे उन के पुत्र श्री दुर्गाप्रसाद खत्री ने लिखा । इन उपन्यासों में कल्पना की दौड़ और अति-प्राकृत प्रसगो की ऐसी अवतारणा है कि वे पाठक के मनोरजन के लिये यथेष्ट सामग्री रखते

है। उन की रोचकता के कारण अनेक उर्दू जानने वालो ने हिंदी सीखने का प्रयत्न किया। इन उपन्यासो की कथा-वस्तु प्राय एक-सी होती है। कोई सुन्दर और वीर राज-कुमार किसी सुन्दरी पर मोहित हो जाता है--प्रत्यक्ष देख कर, उस का चित्र देख कर, उस की कीर्ति सुन कर या उसे स्वप्न म देख कर उस के प्रम में विकल हो जाता है। राजकुमारी भी ऐसा ही करती है। परन्तु वह सामाजिक बाधा या पारस्परिक वैमनस्य के कारण एक दूसरे से नही मिल पाते तो दोनो के छोडे हुए अय्यार एक दूसरे को मिलाने की चेष्टा करते है। अय्यार क्या वस्तु है, इस सम्बन्ध में स्वय श्री देवकीनन्दन खत्री ने लिखा--

"आज हिंदी के बहुत से ऐसे उपन्यास है, जिन में कई तरह की बाते व राजनीति भी लिखी गई है, राजदरबार के तरीके वा सम्मान भी जाहिर किये गये है, मगर राज-दरबार में अय्यार भी नोकर हुआ करते थे, जो कि हरफन-मौला याने सूरत बदलना, बहुत-सी दवाओ का जानना, गाना-बजाना, दौडना, शस्त्र चलाना, जासूसो का काम देखना वगैरह बहुत-सी बाते जाना करते थे। जब राजाओ में लडाई होती थी, ये लोग अपनी चालाकी से बिना खून गिराये वा पल्टनो की जान गँवाए लडाई खत्म कर देते थे। इन लोगो की बडी कद्र थी।"

इन अय्यारो के घात-प्रतिघातो से कुतूहल की सृष्टि की जाती थी। इस से उस में भूल-भुलैयो के भीतर जाने का-सा मज़ा आता था। यो तो उलझन के लिये अय्यारो का समावेश ही काफी था पर इन उपन्यासो मे तिलस्म की भी सृष्टि की गई। डाक्टर श्री कृष्णलाल ने तिलस्म के सबध मे लिखा है--"तिलस्म का भाव हिंदी में फारसी

कहानियो से आया। 'अलीबाबा और चालीस चोर' कहानी मे जब अलीबाबा कहता है 'खुल जा सीसेम' तब एक सुरग-सा खुल जाता है और एक बन्द तहखाना दिखाई पडता है और 'बद हो सीसेम' कहन पर वह उसी प्रकार बंद हो जाता है मानो वहाँ पृथ्वी छोड और कुछ था ही नहो। इसी को तिलस्म कहते है और फारसी कहानियो मे इस का प्राय उपयोग किया जाता है। यह फारसी से उर्दू मे आया और अमीर हमजा न अनक तिलस्मी उपन्यास लिखे जिन म अद्भुत तिलस्मो की सृष्टि की गई। देवकीनंदन खत्री ने उर्दू से ले कर हिंदी मे तिलस्मो का प्रयाग किया परन्तु अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति और प्रतिभा के बल से उन मे इतना कौशल और कवित्व भर दिया कि वे उर्दू और फारसी क तिलस्मो से कही अधिक अद्भुत और आकर्षक बन गये।"[1] इन तिलस्मो मे होता क्या है? उन की बनावट बड़ी विचित्र होती है। तहखाने पर तहखाने चलते चले जाते है। जिस मे महल, फुलवारी और फव्वारो का दृश्य आँखो को तृप्त करता है। किवाड जादू के हाते है और नकली शेर दौडते हैं। वहाँ पुतले तलवार चलाते है और पत्थर के आदमी लडते हैं। ऐस तिलस्मो में राजकुमारी बद कर दी जाती है जिसे अय्यार छुडाते है। अय्यार भी तिलस्मो की भाँति रहस्यमय होते हैं। वे चाहे तो पल भर में सुन्दर युवक या युवती बन जाये, किसी को जड़ी सुंघा-कर बेहोश कर पीठ पर लाद ले, दुर्गम से दुर्गम स्थान पर पहुँच जाये। वे ही तिलस्म को तोड़ने मे सफल होते है।

वस्तुत अय्यारी और तिलस्मी उपन्यासो की मूलकथा मध्ययुग के राजपूत वीरो की कथा का ही रूपान्तर है। राज-

[1]आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास पृ० २९२–२९३

कुमार और राजकुमारी प्रेम के लिये अपना सर्वस्व निछावर कर नाना प्रकार का कष्ट उठाने के वाद मिलते है । यहाँ राजनीतिक दाँव-पेंच के स्थान पर अय्यारो के करतव विशेष महत्त्व के हो गये है । ये उपन्यास होते सुखान्त है । इन का समस्त आकर्षण आश्चर्यजनक घटनाओ की योजनायें है, जिन को ऐसा जमाया जाता है कि वे यथार्थ जान पड़ती है । साधारण पढी-लिखी जनता के लिये ये घटनाएँ कितनी आकर्षक हो सकती है, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

अय्यारी और तिलस्मी उपन्यासो की परपरा के प्रवर्तक श्री देवकीनन्दन खत्री ने अपने विषय के उपन्यासो को चरम उत्कर्ष की सीमा पर पहुँचा दिया था अत ऐसे अन्य उपन्यासकारो ने कोई विशेष प्रतिभा का परिचय नही दिया । हाँ उन के पुत्र श्री दुर्गाप्रसाद खत्री ने ही उन की परपरा को आगे वढाया । उन्हो ने पहले तो अपने पिता के द्वारा अधूरे छोडे हुए उपन्यास 'भूतनाथ' को पूरा किया और फिर साहित्यिक उपन्यासो की रचना की । इन की मुख्य कृतियाँ है—"लालपजा', 'प्रतिशोध', 'रक्तमण्डल' और 'सफेद शैतान' । इन के पात्रो में अधिकाश डकैत है जो साहसपूर्ण डाके डालते हैं । इन का उद्देश्य शुभ है क्योकि इन के पात्र उन वीरो के पूर्वज है, जो आगे चल कर समस्त एशिया को विदेशी साम्राज्यवाद से मुक्त करना चाहते है । इन उपन्यासो से अग्रेज़ो के प्रति घृणा व्यक्त की गई है और उन को उखाड फैकने के लिये रियासतो के सगठन की सभावना पर जोर दिया गया है । इन में जासूसो ने अय्यारो का स्थान ले लिया है जो या तो किसी डाकू-गिरोह के व्यक्ति को फोड कर या स्वय डाकू बन कर उस गिरोह को बन्दी बनाते है । यहाँ लकलका और अय्यारी का बटुआ नही है । उस के

स्थान पर मृत्युकिरण, अलोपी वायुयान, एटमी बन्दूक और विषैली गैसें हैं, जिनसे अंग्रेज और उनके पिट्ठू राजा-नवाबों के मन में आतंक पैदा किया जाता है । इनके नायक वीर और उच्चादर्श वाले होते हैं ।

दुर्गाप्रसाद खत्री को छोड़ कर डकैती और हत्या के उपन्यासों में उच्चादर्शों की कमी है। शेष उपन्यासों में रेनाल्ड्स तथा अंग्रेज़ी के दूसरे रहस्यमय उपन्यासों का प्रभाव है । इनमें षड्यन्त्रकारी कांचन और कामिनी के लिये ही डाके डालते या हत्यायें करते हैं।

साहित्यिक उपन्यासों से मिलते-जुलते ही जासूसी उपन्यास होते हैं, जिनको हिंदी में लाने का श्रेय श्री गोपालराम गहमरी को है । इन्होंने छोटे-बड़े १५० उपन्यास लिखे । 'जासूस' नामक एक पत्र भी इन्होंने निकाला था, जिसमें इन के उपन्यास छपते थे। जासूसी उपन्यास अय्यारी और तिलस्मी तथा साहित्यिक उपन्यासों से कुछ भिन्न होते हैं । अय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों में घटनाएँ आगे की ओर चलती हैं और एक के बाद एक घटना स्वाभाविकता से जुडी रहती है पर जासूसी उपन्यासों मे किसी हत्या, चोरी या अन्य अपराध का पता वैज्ञानिक सूक्ष्मता से लगाया जाता है, जिससे घटनाएँ पीछे की ओर गतिशील होती है । साहित्यिक उपन्यासों में कथावस्तु तो जासूसी उपन्यासों की सी होती है—वही डकैती या हत्या से सम्बंधित परन्तु साहित्यिक उपन्यास अय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों की ही संतान हैं अतः उनमें घटना की गति आगे को ही रहती है। वहाँ अय्यार और तिलस्म के स्थान पर जासूस आगये हैं बस इतना ही अन्तर है । जासूसी उपन्यासों में किसी हत्या या चोरी से सम्बन्धित स्थान, व्यक्ति या घटना की बड़ी सूक्ष्मता से जाँच-

पडताल की जाती है और उसका पता लगाया जाता है। इसमें बडी वैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता होती है। एक-एक सूत्र को सिलसिलेवार पकड कर आगे वढाया जाता है। इसमे कथा स्वाभाविक होती है और उलझने बडी सरलता स सुलझाई जाती है। ऐसे उपन्यासो के लिखने की प्रेरणा गहमरी जी को क्यो हुई, यह उन्होने 'साहित्य सदेश' के उपन्यास अक (अक्तूवर, नवम्वर १९४०) में अपने अनुभव लिखते हुए वताया है। वे लिखते है—"वावू नगेन्द्र नाथ गुप्त का एक उपन्यास 'हीरार मूल्य शेखर घूली' मैने हिंदी में हीरे का मोल' लिखकर वेंक्टेश्वर समाचार मे छपवाया। उसको हिंदी पाठको ने इतना पसद किया कि मैने केवल वैसे ही डिटेक्टिव उपन्यासो का मासिक पत्र निकालना निश्चित किया। तभी से मैने जासूसी उपन्यास लिखने की ठानी। उस समय 'हीरे का मोल' का पसद किया जाना और वम्वई में ही महालक्ष्मी के मदिर मे एक खूनी धोबी का, जो महन्त वना वैठा था, मेरी प्राइवेट मुखवरी से पकडा जाना, इन दोनो के प्रभाव से मेरी रुचि जासूसी उपन्यास लिखने मे वढी और तव से कोई १५० छोटे-बडे उपन्यास (जासूसी) लिखे और अनुवाद किये।"

गहमरी जी की रचनाओ मे 'हत्या का रहस्य', 'गेरुआ वावा', 'मेम की लाश' और 'जासूस की जवानी' विशेष प्रसिद्ध है। जासूसी उपन्यासो से पहिले गहमरी जी ने दस-वारह गार्हस्थ्य-उपन्यास भी लिखे, जिन में 'सास पतोहू', 'गृहलक्ष्मी', 'देवरानी जिठानी', 'तीन पतोहू' आदि उल्लेखनीय है।

गोपालराम गहमरी के बाद हिंदी उपन्यास के आकाश मे

एक ऐसे नक्षत्र का नाम आता है, जिसने अपने पूर्व की समस्त धाराओ को लेकर तो उपन्यास लिखे ही, उपन्यास की दिशा को अय्यारी और तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यासो से सामाजिकता की ओर मोड़ा। उनका नाम था श्री किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२)। इनका पहला उपन्यास 'प्रणयिनी-परिचय' सन् १८९० मे प्रकाशित हुआ था। उसके बाद उनकी बहुत सी रचनाएँ निकली। गोस्वामी जी सस्कृत के मर्मज्ञ और हिंदी के पुराने ढग के कवि थे। सन् १८९८ मे उन्होने 'उपन्यास' नामक एक अखबार निकाला था, जिसमें उन्होने छोटे-बड़े उपन्यास लिखकर प्रकाशित किये। जिनमें हिंदी की सबसे पहली कहानी 'इन्दुमती' भी शामिल है। ये कट्टर सनातन-धर्मी और स्वभाव के रसिक और स्वाभिमानी व्यक्ति थे।

गोस्वामी जी ने अय्यारी और तिलस्मी, जासूसी, एतिहासिक और सामाजिक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे। लेकिन इनके सब उपन्यासो के मूल मे प्रेम की चर्चा है। वह प्रेम भी रीतिकालीन नायक-नायिकाओ का प्रेम है, जिसका कारण उनका रीतिकालीन कवि होना है। ये उपन्यास अश्लील भी हो गये है। रीतिकालीन प्रेम या शृंगार भावना इनके ऊपर इतनी बुरी तरह हावी है कि अय्यारी और तिलस्मी, जासूसी और ऐतिहासिक उपन्यासो तक में वह विद्यमान है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे अनेक दोष है पर हिंदी में पहले ऐतिहासिक उपन्यासकार होने के कारण उनका महत्व बहुत अधिक है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासो के विषय में उन्होने लिखा है—"यहाँ कल्पना का राज्य है, यथेष्ट लिखित इतिहास का नही और इसमे आर्यों के यथार्थ गौरव का गुण-कीर्तन है। · इसलिये लोग इसे इतिहास

न समझें और इसकी सम्पूर्ण घटना को इतिहासो में खोजने का उद्योग भी न करें ।" ('तारा' उपन्यास की भूमिका) सभवत यही कारण है कि इनके 'लखऊ की कब्र' में अय्यारो और तिलस्म का वर्णन है, 'शोणित तर्पण' में जासूसी का चमत्कार है और 'कोहेनूर' तथा 'शीशमहल' मे नायक-नायिका के प्रेम-प्रसग का आश्रय लिया गया है ।

उनके उपन्यासो के उद्देश्य के सम्वन्ध मे श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' ने लिखा है—"उनकी सृष्टि का मुख्य आधार होता है कर्म सिद्धान्त—'जो जस करइ सो तस फल चाखा' यही उद्देश्य है जो वार-वार परिलक्षित होता है । अत वुरे को वुरा और भले को भला फल प्राप्त करते देखना उनके उपन्यासो में स्वाभाविक है और भले की वात यह है कि फल प्राप्ति भलाई या बुराई के परिणाम पर भी अवलवित रहती है । दहेज, वाल-विवाहादि तत्कालीन कुरीतियो पर भी जहाँ तहाँ आलोचनात्मक विवेचन किया गया है पर उनकी पृष्ठ-भूमि का वास्तविक कथानक न होने से उनका कोई वास्तविक मूल्य नही रह जाता ।" (साहित्य सदेश उपन्यास अक अक्टूबर, नवम्बर ४० पृष्ठ ९० ।) इनके उपन्यासो की भाषा पात्रानुकूल होती है पर उसका रूप कही सस्कृत-तत्सम शव्द बहुल है और कही अरबी फारसी मिश्रित । इससे भाषा की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है । आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का मत है—"कुछ दिन पीछे इन्हें उर्दू लिखने का शौक हुआ । उर्दू भी ऐसी वैसी नही, उर्दू-ए-मुअल्ला । ××× उर्दू ज़बान और शेरसखुन की बेढगी नकल से जो असल से भी कभी-कभी साफ़ अलग हो जाती है,

इन के उपन्यासों का साहित्यिक गौरव घट गया है ।"
(हिन्दी साहित्य का इतिहास छठा सस्करण पृष्ठ ५००)
ऐसा सर्वत्र नही हुआ । 'राजकुमारी', 'अगूठी का नगीना'
आदि उपन्यासो मे इन की भाषा का आदर्श वही है, जो
भारतेदु का है । उन मे तद्भव और देशज शब्दो के साथ
मुहावरो और कहावतो का भी अच्छा प्रयोग किया गया
है । रूप-सौदर्य के वर्णन और दृश्य चित्रण में जो कवित्व
की छटा मिलती है वह इन की भाषा की विशपता है । 'तारा,'
'चपला', 'तरुण तपस्विनी,' 'रजिया बेगम,' 'लवंगलता,'
'हृदय हारिणी,' 'हीराबाई' आदि इन के प्रमुख उपन्यास है ।

श्री किशोरीलाल गोस्वामी ने उपन्यास को सामाजिकता देने की चेष्टा की थी पर वे रीतिकालीन व शृगार
की छाया लिये हुए है, यह हम कह चुके है । उन के बाद
हिंदी में भावात्मक उपन्यासो का सृजन हुआ । इस दिशा
मे आरा के बाबू व्रजनन्दन सहाय ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया ।
सन् १९१२ मे उन का 'सौदर्योपासक' और उस के बाद
'राधाकान्त' दो कृतियाँ प्रकाशित हुई । हिंदी मे 'कादम्बरी'
की गद्यकाव्यात्मक शैली पर ठाकुर जगमोहन सिंह का
'श्यामा स्वप्न' और प० अम्बिकादत्त व्यास का 'आश्चर्य
वृत्तान्त' इन उपन्यासो से पहले निकल चुके थे पर उन मे
घटना-बाहुल्य बना हुआ था क्योकि वे ऐसे ही युग मे लिखे
गये थे जब घटना प्रधान उपन्यासो की तूती बोल रही थी ।
बाबू व्रजनन्दन सहाय के उपन्यास कादम्बरी-शैली से भिन्न
बगला के 'उद्भ्रान्त प्रेम' नामक ग्रथ के अनुकरण पर लिखे
गये । 'उद्भ्रान्त प्रेम' बंगला के श्री चन्द्रशेखर मुख्योपाध्याय
की रचना है, जिस में लेखक अपनी मृतपत्नी के शोक मे
अपने हृदयोद्गार व्यक्त करता है । 'सौदर्योपासक' मे नायक
अपने विवाह के समय अपनी साली पर मुग्ध होता है ।

होते-होते दोनो ही एक दूसरे के विरह में विकल रहते हैं। सामाजिक बधन नायक की पत्नी और साली दोनो को मृत्यु का ग्रास बनाते है और अन्त मे नायक रोने को रह जाता है। इन उपन्यासो में कथावस्तु या चरित्र-चित्रण की महत्ता नही रहती। घटनाएँ भी बहुत ही कम होती है। करुण और भावपूर्ण उद्गारो मे ही इन उपन्यासो का सौंदर्य निहित रहता है। यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से ये अनमेल-विवाह की समस्या पर भी प्रकाश डालते है और सामाजिक रूढियो की विभीषिका की ओर भी हमारा ध्यान खीचते हैं तथापि मूल ध्येय इन का कवित्वपूर्ण भाव-व्यजना ही है। भावो की विस्तार से व्यजना बडी प्रवाहपूर्ण शैली मे की जाती है।

आगे चल कर इस शैली को श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ने 'मनोरमा' मे या श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने 'भ्रमित पथिक' में अपनाया पर उस का अधिक प्रचार नही हुआ। इस के कारण दो थे। एक तो महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताजलि के अग्रेजी अनुवाद के हिंदी रूपान्तर ने गद्यगीतो को, जिन मे ऐसे उद्गार बडी सरलता से व्यक्त हो सकते थे, जन्म दिया और यो जो बात इन उपन्यासो मे कही जा सकती थी वह गद्यगीतो मे कही जाने लगी। दूसरी बात यह हुई कि हिन्दी उपन्यास मे यथार्थ चित्रण ने अपना सिक्का इसी समय जमाया। विशेषकर प्रेमचन्द के उदय ने ऐसे उपन्यासो का भविष्य सदैव को अन्धकारमय कर दिया। इतना होने पर भी हिंदी की गद्यकाव्य धारा को इस शैली के उपन्यासो से बडा बल मिला।

अब तक हम ने मौलिक उपन्यासो का चर्चा किया है। लेकिन मौलिक से अधिक नहीं तो कम से कम बराबर की

सख्या मे जो अनूदित उपन्यास हिंदी में आये उन का उल्लेख होना नितान्त आवश्यक है । इस के बिना हम उपन्यास-साहित्य की सामग्री और उस की दिशा का ठीक-ठीक अनुमान नही लगा सकते । यो तो भारतेदु बाबू ने 'पूर्ण प्रभा चद्र प्रकाश' नाम से सब से पहले मराठी उपन्यास का एक अनुवाद प्रकाशित कराया था पर आगे चल कर हिंदी मे बगला उपन्यासो का अनुवाद विशेप रूप मे हुआ। जिन बगला लेखको के उपन्यासा का अनुवाद हुआ उन मे बकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, चण्डीचरण के नाम प्रमुख है। इन के उपन्यासो का अनुवाद राधाकृष्ण-दास, चक्रधरसिह, गदाधरसिह, कार्तिकप्रसाद खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा और रूपनारायण पाण्डेय ने किया। अन्य भापाओ मे मराठी और उर्दू से अनुवाद हुए । मराठी से श्री रामचन्द्र वर्मा ने अनुवाद किए और उर्दू से श्री गगाप्रसाद गुप्त ने । अग्रेजी से रेनाल्ड्स के अनुवाद हुए । वस्तुत उर्दू और अग्रेजी से कोई अच्छा अनुवाद नही हुआ । सन् १९०५ के रूस जापान युद्ध की झलक देने वाले, 'टाम काका की कुटिया' को छोड़ कर अग्रेजी से तो अश्लील और जासूसी उपन्यास ही अधिक आये । उर्दू का भी यही हाल रहा । परिणाम यह हुआ कि इन अनुवादो का शुभ प्रभाव नही पड़ा । एक प्रकार से इन का प्रभाव घातक ही रहा ।

अनुवादो में बगला का ही हिंदी पर विशेष ऋण है। इस का कारण यह है कि बगाली लेखको में बंकिम, रवीन्द्र, शरत् आदि में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना बड़े ऊँचे दर्जे की थी । अग्रेजी शिक्षा के सुमधुर फल भी पहले बगालियो को ही चखने को मिले थे इस लिये उन के उपन्यासो में यथार्थ जीवन और सास्कृतिक पुनर्जागरण की

होते-होते दोनो ही एक दूसरे के विरह में विकल रहते है। सामाजिक बधन नायक की पत्नी और साली दोनो को मृत्यु का ग्रास बनाते है और अन्त मे नायक रोने को रह जाता है । इन उपन्यासो मे कथावस्तु या चरित्र-चित्रण की महत्ता नही रहती। घटनाएँ भी बहुत ही कम होती है। करुण और भावपूर्ण उद्गारो मे ही इन उपन्यासो का सौदर्य निहित रहता है। यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से ये अनमेल-विवाह की समस्या पर भी प्रकाश डालते है और सामाजिक रूढियो की विभीषिका की ओर भी हमारा ध्यान खीचते है तथापि मूल ध्येय इन का कवित्वपूर्ण भाव-व्यजना ही है। भावो की विस्तार से व्यजना बड़ी प्रवाहपूर्ण शैली मे की जाती है।

आगे चल कर इस शैली को श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ने 'मनोरमा' मे या श्री सद्गुरुशरण अवस्थी ने 'भ्रमित पथिक' में अपनाया पर उस का अधिक प्रचार नही हुआ। इस के कारण दो थे । एक तो महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताजलि के अग्रेजी अनुवाद के हिंदी रूपान्तर ने गद्यगीतो को, जिन मे ऐसे उद्गार बडी सरलता से व्यक्त हो सकते थे, जन्म दिया और यो जो बात इन उपन्यासो में कही जा सकती थी वह गद्यगीतो मे कही जाने लगी। दूसरी बात यह हुई कि हिन्दी उपन्यास मे यथार्थ चित्रण ने अपना सिक्का इसी समय जमाया । विशेषकर प्रेमचन्द के उदय ने ऐसे उपन्यासो का भविष्य सदैव को अन्धकारमय कर दिया । इतना होने पर भी हिंदी की गद्यकाव्य धारा को इस शैली के उपन्यासो से बडा बल मिला ।

अब तक हम ने मौलिक उपन्यासो का चर्चा किया है। लेकिन मौलिक से अधिक नही तो कम से कम बराबर की,

सख्या मे जो अनूदित उपन्यास हिंदी मे आये उन का उल्लेख होना नितान्त आवश्यक है । इस के विना हम उपन्यास-साहित्य की सामग्री और उस को दिशा का ठीक-ठीक अनुमान नही लगा सकते । यो तो भारतेदु वाबू ने 'पूर्ण प्रभा चद्र प्रकाश' नाम से सब से पहले मराठी उपन्यास का एक अनुवाद प्रकाशित कराया था पर आगे चल कर हिंदी मे वगला उपन्यासो का अनुवाद विशेप रूप मे हुआ। जिन बगला लेखको के उपन्यासा का अनुवाद हुआ उन मे वकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, चण्डीचरण के नाम प्रमुख है। इन के उपन्यासो का अनुवाद राधाकृष्ण-दास, चक्रधरसिह, गदाधरसिह, कार्तिकप्रसाद खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा और रूपनारायण पाण्डेय ने किया। अन्य भापाओ मे मराठी और उर्दू से अनुवाद हुए । मराठी से श्री रामचन्द्र वर्मा ने अनुवाद किए और उर्दू से श्री गगाप्रसाद गुप्त ने । अग्रेज़ी से रेनाल्ड्स के अनुवाद हुए । वस्तुत उर्दू और अग्रेज़ी से कोई अच्छा अनुवाद नही हुआ । सन् १९०५ के रूस जापान युद्ध की झलक देने वाले, 'टाम काका की कुटिया' को छोड़ कर अग्रेज़ी से तो अश्लील और जासूसी उपन्यास ही अधिक आये । उर्दू का भी यही हाल रहा । परिणाम यह हुआ कि इन अनुवादो का शुभ प्रभाव नही पड़ा । एक प्रकार से इन का प्रभाव घातक ही रहा ।

अनुवादो में वगला का ही हिंदी पर विशेष ऋण है । इस का कारण यह है कि बगाली लेखको में वकिम, रवीन्द्र, शरत् आदि में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना बड़े ऊँचे दर्जे की थी । अग्रेज़ी शिक्षा के सुमधुर फल भी पहले वगालियो को ही चखने को मिले थे इस लिये उन के उपन्यासों में यथार्थ जीवन और सास्कृतिक पुनर्जागरण की

होते-होते दोनो ही एक दूसरे के विरह में विकल रहते है। सामाजिक बधन नायक की पत्नी और साली दोनो को मृत्यु का ग्रास बनाते है और अन्त मे नायक रोने को रह जाता है । इन उपन्यासो में कथावस्तु या चरित्र-चित्रण की महत्ता नही रहती। घटनाएँ भी बहुत ही कम होती है। करुण और भावपूर्ण उद्‌गारो में ही इन उपन्यासो का सौंदर्य निहित रहता है। यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से ये अनमेल-विवाह की समस्या पर भी प्रकाश डालते है और सामाजिक रूढियो की विभीषिका की ओर भी हमारा ध्यान खीचते है तथापि मूल ध्येय इन का कवित्वपूर्ण भाव-व्यंजना ही है। भावो की विस्तार से व्यजना बडी प्रवाहपूर्ण शैली मे की जाती है।

आगे चल कर इस शैली को श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' ने 'मनोरमा' मे या श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी ने 'भ्रमित पथिक' में अपनाया पर उस का अधिक प्रचार नही हुआ। इस के कारण दो थे । एक तो महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताजलि के अग्रेजी अनुवाद के हिंदी रूपान्तर ने गद्यगीतो को, जिन मे ऐसे उद्‌गार बडी सरलता से व्यक्त हो सकते थे, जन्म दिया और यो जो बात इन उपन्यासो में कही जा सकती थी वह गद्यगीतो मे कही जाने लगी। दूसरी बात यह हुई कि हिन्दी उपन्यास मे यथार्थ चित्रण ने अपना सिक्का इसी समय जमाया । विशेषकर प्रेमचन्द के उदय ने ऐसे उपन्यासो का भविष्य सदैव को अन्धकारमय कर दिया । इतना होने पर भी हिंदी की गद्यकाव्य धारा को इस शैली के उपन्यासो से बड़ा बल मिला।

अब तक हम ने मौलिक उपन्यासो का चर्चा किया है। लेकिन मौलिक से अधिक नही तो कम से कम बराबर की

सख्या मे जो अनूदित उपन्यास हिंदी में आये उन का उल्लेख होना नितान्त आवश्यक है । इस के विना हम उपन्यास-साहित्य की सामग्री और उस को दिशा का ठीक-ठीक अनुमान नही लगा सकते । यो तो भारतेंदु बाबू ने 'पूर्ण प्रभा चद्र प्रकाश' नाम से सब से पहले मराठी उपन्यास का एक अनुवाद प्रकाशित कराया था पर आगे चल कर हिंदी मे बगला उपन्यासो का अनुवाद विशेष रूप मे हुआ । जिन बगला लेखको के उपन्यासा का अनुवाद हुआ उन मे वकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, शरच्चन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, चण्डीचरण के नाम प्रमुख है । इन के उपन्यासो का अनुवाद राधाकृष्ण-दास, चक्रधरसिंह, गदाधरसिंह, कार्तिकप्रसाद खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा और रूपनारायण पाण्डेय ने किया । अन्य भाषाओ मे मराठी और उर्दू से अनुवाद हुए । मराठी से श्री रामचन्द्र वर्मा ने अनुवाद किए और उर्दू से श्री गगाप्रसाद गुप्त ने । अग्रेजी से रेनाल्ड्स के अनुवाद हुए । वस्तुत· उर्दू और अग्रेजी से कोई अच्छा अनुवाद नही हुआ । सन् १९०५ के रूस जापान युद्ध की झलक देने वाले, 'टाम काका की कुटिया' को छोड़ कर अग्रेजी से तो अश्लील और जासूसी उपन्यास ही अधिक आये । उर्दू का भी यही हाल रहा । परिणाम यह हुआ कि इन अनुवादों का शुभ प्रभाव नही पड़ा । एक प्रकार से इन का प्रभाव घातक ही रहा ।

अनुवादो मे बगला का ही हिंदी पर विशेष ऋण है । इस का कारण यह है कि बगाली लेखको में बंकिम, रवीन्द्र, शरत् आदि में राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना बड़े ऊँचे दर्जे की थी । अग्रेजी शिक्षा के सुमधुर फल भी पहले बगालियो को ही चखने को मिले थे इस लिये उन के उपन्यासो में यथार्थ जीवन और सास्कृतिक पुनर्जागरण की

गूंज थी। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के शब्दो में--"पहिले हम 'अलिफ लैला' के देश में थे। बगला के सम्पर्क से हम अपनी माँ-बहनों, भाई-बन्धुओ के समाज में आए" (साहित्य सन्देश उपन्यास अक पृष्ठ ५७)। उस से हिंदी उपन्यास लेखकों और जनता दोनो को लाभ हुआ। उपन्यास लेखको को यह लाभ हुआ कि वे युग के अनुकूल बगला उपन्यासो के अनुकरण पर श्रेष्ठ उपन्यास लिखने की ओर प्रवृत्त हुए। और जनता भी, जो कि अब तक 'तिलस्मी होशरुबा' या 'लन्दन रहस्य' जैसे तिलस्मी और जासूसी उपन्यासो की दुनियाँ में यथार्थ जीवन की समस्याओ से हट कर जी रही थी, सुरुचि पूर्ण उपन्यासो को पढ़ने के लिये लालायित हो उठी। लेखको को बंगला से कितना लाभ हुआ होगा, इस का अनुमान प्रेमचद की इस बात से लगता है कि उन्हो ने रवीन्द्रनाथ की कुछ गल्पो का अनुवाद भी छपाया था। बकिम के ऐतिहासिक उपन्यासो और शायद उसके सामाजिक उपन्यासो की परपरा का आरभ भी हमारे यहाँ हुआ।

लेकिन बंगला के अत्यधिक अनुकरण से एक बडी भारी हानि भो हुई। लेखको मे अनुकरण-शक्ति का रोग बढ गया और वे बहुत दिन बाद जा कर स्वतत्र मार्ग खोज पाये। डाक्टर श्रीकृष्णलाल ने ठीक ही लिखा है--"बकिमचन्द्र, शरच्चद्र और रवीन्द्रनाथ के उपन्यास हमारे शिक्षित और साहित्यिक लोगो के लिये बहुत अच्छे थे। वे उन से इतने अधिक विस्मित हुए कि उन के सामने मौलिक रचना करने का वे ख्याल भी न ला सके। उन्हो ने अपना सारा कौशल उन के अनुवाद और प्रकाशन में ही लगा दिया। स्वय पाठक भी इतने सुन्दर उपन्यासो को छोड़ कर नौसिखिए हिंदी लेखकों की रचना पढ़ना पसद न करते थे। फल यह हुआ कि हिंदी में मौलिक उपन्यास नहीं लिखे

गये और अनूदित उपन्यासों की धूम मच गई।" (आ० हि० सा० का विकास पृष्ठ ३२१)।

यदि उपर्युक्त उपन्यास साहित्य के सम्बंध में सारांशतः कुछ कहा जाय तो हम देखेंगे कि हमारा उपन्यास साहित्य आरम्भ में सामाजिक और नैतिक ध्येय को लेकर चला है। उस समय पाश्चात्य और पौर्वात्य विचारधाराओ मे टक्कर हुई थी। अग्रेजी सभ्यता और सस्कृति के प्रति ऐसा भयंकर मोह देश मे था कि अपनी सस्कृति तुच्छ जान पड़ती थी। आर्थिक शोषण भी था पर उसका प्रतिकार न कर समाजोत्थान द्वारा ही अपनी रक्षा का यत्न हुआ। आर्यसमाज ने उसका बीड़ा उठाया और समाज मे व्याप्त कुरीतियो और रूढियो का उन्मूलन करने की चेष्टा की। आरम्भिक उपन्यासो में ये ही बाते प्रकारान्तर से रखी गई है। दवे-दबे राजनीतिक असतोष भी व्यक्त किया गया है। पर उस समय मध्यवर्गीय समाज मे जो अनैतिकता व्याप्त थी उसके फलस्वरूप अय्यारी और तिलस्मी, जासूसी और रोमानी प्रेम के उपन्यासो का दौर चला। यथार्थ से दूर एक काल्पनिक जगत मे पलायन के लिये इन उपन्यासो ने अच्छा मसाला जुटाया। व्यावसायिक मनोवृत्ति ने भी लेखको को ऐसी रचनाएँ लिखने को विवश किया जो बिक सके। दूसरे उर्दू और अंग्रेजी का भी इसी प्रकार का सस्ता साहित्य लोगो के सामने था। इन सब के कारण इस अफीम के नशे जैसे साहित्य ने सामाजिक-नैतिक उपन्यासों की यथार्थवादी परम्परा रोक दी। कभी-कभी 'रक्त-मण्डल' जैसे उपन्यासो में हमे विद्रोह की ध्वनि सुनाई पड़ती है पर यह इतनी मद है कि उससे दिमागी अय्याशी को कोई धक्का नही लगता। इस षड्यन्त्र और विलास के वातावरण में लेखक ऐसे खो

जाते हैं कि किशोरीलाल गोस्वामी तो प्रथम महायुद्ध के समय सन् १६१८ मे लिखे 'अँगूठी का नगीना' मे भी वही हलके शृगार की झाकी देते हैं। लेकिन सौभाग्य से जब इन छिछले उपन्यासो की बाढ़ आई हुई थी प्रेमचन्द का उदय हो गया और उनके आते ही हिंदी और उर्दू दोनो के उपन्यास जगत में क्रान्ति मच गई। उपन्यास यथार्थ जीवन का चित्र हो गया। प्रेमचन्द से पूर्व के उपन्यासो मे कथानक अनियत्रित होते थे, प्रासगिक घटनाओ के लबे-चौडे व्यौरे दिये जाते थे, चरित्रो के विकास या उत्थान पतन की चिता नही की जाती थी, भाषा के साथ अनेक प्रकार से खिलवाड होते थे, और लम्बे-चौडे वर्णनो की भरमार रहती थी, ऐसी अनिश्चितता की अवस्था थी प्रेमचन्द के आने मे पूर्व। फिर भी इन सब से प्रेमचन्द का मार्ग प्रशस्त हुआ। एक कुशल कलाकार की भाँति उन्होने समस्त झाड-झखाड़ो को काट-छाँट कर उपन्यास के लिये सुन्दर राज मार्ग तैयार कर दिया।

प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यासों की स्थिति पर भी विचार हो चुका। अब ज़रा कहानी की ओर देख लेना चाहिए कि वह किस दशा मे थी। जहाँ तक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति का सबध है, कहानी और उपन्यास के लिये समान स्थितियाँ थी। इतना होने पर भी आधुनिक कहानी का जन्म आधुनिक उपन्यास के लगभग २०-२५ वर्ष बाद हुआ। इसका कारण यह है कि अग्रेजी साहित्य का व्यापक प्रभाव सन् १६०० के बाद ही पडना आरम्भ हुआ, जबकि 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' जैसे पत्र निकले। देशी और विदेशी साहित्य की गति विधि और उसमें जो कुछ अपनी भाषा की समृद्धि के आवश्यक और अनिवार्य तत्व थे

उनको ग्रहण करने का एक विशाल आन्दोलन-सा 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ आरम्भ हो गया । भाषा सस्कार और भारतीयता की भावना का स्वस्थ रूप भी लोगों के समक्ष रखने का प्रयास वडे उत्साह से होने लगा । एक प्रकार से इसमें यह स्वाधीन चेतना का ऐसा ज्वार उठा कि हम किसी वात म किसी से पीछे न रहें । भारतेन्दु काल में जो पाश्चात्य सस्कृति की ओर घृणा का भाव था, अपनी दशा पर आत्मग्लानि की व्यंजना थी, प्राचीन गौरव की पुनर्प्राप्ति का आवाहन था, उसमें अब सतुलन आ गया था । अब यह कोशिश होने लगी थी कि विदेशी साहित्य और सस्कृति में जो अच्छा है, अपने गौरव के अनुकूल है, उसे ग्रहण करना बुरा नही है । अग्रेजी पढे-लिखे लोगो ने भी हिंदी में लिखना शुरू कर दिया था । हिंदी पढे-लिखे भी अग्रेजी तथा अन्य योरोपीय भाषाओ के साहित्य के सम्पर्क में आ गये थे । इन सब कारणों से आधुनिक कहानी का जन्म आधुनिक ढग के उपन्यासों से २०-२५ वर्ष वाद हुआ ।

हिंदी का पहला उपन्यास 'परीक्षा गुरु' था जो सन् १८८२ में प्रकाशित हुआ था । हिंदी की पहली कहानी 'इन्दुमती' है जो सन् १९०० में किशोरीलाल गोस्वामी ने लिखी थी । कुछ लोगों का मत है कि 'इन्दुमती' आधुनिक कहानियो की पूर्वज नही मानी जा सकती क्योकि उसमें उपदेशात्मकता के तत्व वैसे ही है, जैसे कि प्राचीन कहानियों में होते थे । फिर यह शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' की छाया लेकर लिखी गई है इसलिये मौलिक भी नही है । तव फिर हिंदी की पहली आधुनिक ढग की मौलिक कहानी कौन सी है ? वस्तुत. सन् १९०० में अग्रेजी और सस्कृत नाटको को कहानी के रूप में प्रस्तुत करने का ही उपक्रम किया गया

था। शेक्सपीयर के नाटको के आधार पर 'सिम्बलीन', 'एथेन्सवासी टाइमन', 'पैरिक्लीज और 'कौतुकमय मिलन' आदि कहानियाँ सन् १६०० में 'सरस्वती' में छपी थी। सस्कृत नाटको में 'रत्नावली', 'मालविकाग्निमित्र' और 'कादम्बरी' के अनुवाद प्रकाशित हुए थे। इनके अनन्तर विद्यानाथ शर्मा की 'विद्या-बहार' (१६०६) और वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबद भाई' (१६०६) और मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' तथा 'निन्यानवे का फेर' (१६०६) कहानियाँ निकली। लेकिन ये कहानियाँ या तो प्राचीन आख्यायिकाओ की शैली पर थी या प्रेमाख्यान काव्यो की शैली पर या अग्रेजी कथाओ के आधार पर। मौलिकता की दृष्टि से इनका भी कोई विशेष मूल्य नही है। श्री माधवप्रसाद मिश्र ने 'सुदर्शन' पत्र मे जो कहानियाँ छपाई वे भी इसी कोटि की थी। श्री गिरिजाकुमार घोष (पार्वतीनन्दन), श्रीमती बग महिला, स्वामी सत्यदेव, विश्वम्भरनाथ जिज्जा आदि ने विदेशी कहानियो के रूपान्तर प्रस्तुत किये। यो १६०० से १६१० तक हिंदी कहानी प्रयोगावस्था से गुज़री।

कुछ विद्वान् श्रीमती बग महिला लिखित 'दुलाई वाली' (१६०७) को हिंदी की पहली कहानी मानते है। सन् १६११ मे 'इन्दु' का उदय हुआ जिस मे जयशकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' निकली। इसी समय श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'सुखमय जीवन' कहानी 'भारत मित्र' मे छपी। सन् १६१२ मे प्रसाद जी की दूसरी कहानी 'रसिया बालम' छपी। लेकिन गुलेरी जी और प्रसाद जी की कहानियो मे प्रेमाख्यानक कथाओ की छाप और आदर्शवादी दृष्टिविन्दु रखा गया था। यद्यपि 'दुलाई वाली' मे जीवन की एक छोटी सी घटना को यथार्थ चित्रण द्वारा प्रस्तुत किया गया था पर आरम्भिक कहानियों मे आकस्मिक घटनाओं

की योजना द्वारा कहानी के ध्येय तक पहुँचने के प्रयत्न होते थे। श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की 'रक्षा-बधन' और ज्वालादत्त शर्मा की 'तस्कर' तथा 'विधवा' कहानियाँ ऐसी ही है। इन कहानियो मे घटना-बाहुल्य और अद्भुत सयोग की प्रधानता के कारण कहानी के प्रकृत स्वरूप से ये काफ़ी दूर जा पड़ती हैं। प्रसाद जी में प्रेम और सौंदर्य के साथ प्रकृति-चित्रण की कवित्व-मयी झलक का आभास पहले से ही मिलने लगा था। जीवन के किसी खण्ड को यथार्थ के वातावरण में रख कर कोई संदेश देना, जो कहानी का सब से बडा गुण है, अभी कहानी ने नही सीखा था। कहानी जैसे कभी सस्कृत और अग्रेज़ी नाटको या कथाओ की ओर जाती है, कभी प्रेमाख्यान के काव्य ग्रथो की ओर, पर उसे मार्ग नही मिलता। ऐसी स्थिति मे प्रेमचन्द से पूर्व वह जी रही थी और आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। प्रेमचन्द ने उपन्यास की भाँति कहानी को भी चारित्रिक विशेषता और मनोवैज्ञानिक सत्य से विभूषित किया। यदि उर्दू को हिंदी की एक शैली माना जाए तो उन की सन् १९०७ में 'ज़माना' में प्रकाशित 'ससार का सब से अनमोल रत्न' कहानी को पहली कहानी मानना चाहिए पर बडे-बडे विद्वान् भी ऐसा नही मानते, जो गलत है। वे लोग सन् १९१६ में प्रकाशित 'पचपर-मेश्वर' कहानी को ही प्रेमचन्द की सब से पहली कहानी मानते हैं। हालाकि श्री श्रीनारायण पाण्डेय के अनुसार 'पचपरमेश्वर' के पहली कहानी होने की बात गलत सिद्ध होती है। प्रेमचन्द की 'सौत' नामक कहानी ('सरस्वती' दिसम्बर १९१५ पृ० ३५३—३५९) और 'सज्जनता का दण्ड' ('सरस्वती' मार्च १९१६ पृ० १४६ से १५०) 'पच-परमेश्वर' के पहले प्रकाशित हो चुकी थी। 'पंचपरमेश्वर',

'सरस्वती' पत्रिका में जून १६१६ में प्रकाशित हुई थी। इस हालत में 'पचपरमेश्वर' प्रेमचन्द की पहली कहानी नही ठहरती।" (हिंदी प्रचारक, काशी, अगस्त १६५५ पृष्ठ १२)।

साराश यह है कि प्रेमचन्द से पूर्व कहानी की वही स्थिति थी, जो उपन्यास की। कहानी को आधुनिक परिभाषा के अनुसार बना कर हिन्दी में ले आने का श्रेय प्रेमचन्द को ही है। यों उपन्यास और कहानी दोनो को विकास के राजपथ पर ला कर प्रेमचन्द ने खडा किया और दोनो ही क्षेत्रो मे अन्तिम समय तक कितने ही प्रकार के प्रयोग करते रहे। ऐसे विकासशील कलाकार थे प्रेमचन्द।

प्रेमचन्द का जीवन और व्यक्तित्व

प्रेमचन्द का जन्म बनारस से चार मील दूर लमही गाँव में सावन वदी १०, संवत् १९३७ (३१ जुलाई १८८० ई०) शनिवार को हुआ था। वे जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे। उन के पिता का नाम अजायबराय और माता का नाम आनन्दी देवी था। एक बड़ी बहन भी थी जिस से वे आठ वर्ष छोटे थे। माता-पिता दोनो सग्रहिणी के रोगी थे। प्रेमचन्द के दो नाम और थे। उन के पिता का रखा हुआ धनपतराय और दूसरा उन के चाचा का रखा हुआ नवाबराय। प्रेमचन्द नाम कैसे पडा, इस विषय मे उस समय कानपूर से निकलने वाले 'जमाना' उर्दू मासिक के सपादक मुशी दयानारायण निगम ने लिखा है—"प्रेमचन्द शुरू मे नवाबराय नाम से लिखा करते थे और यह नाम उन्हे बहुत प्रिय था क्योकि उन के पिता प्यार से उन्हे 'नवाब' के नाम से पुकारा करते थे। यह नाम हिन्दू-मुसलमानो की सामाजिक एकता की भी याद ताजा रखने वाला था; मगर जब 'सोज़े वतन' की वेजा जब्ती के वाद उन के अफसरों ने उन्हे लिखने और कितावें छापने की मनाही कर दी तो उन को यह नाम छोडना पडा। सकीर्ण हृदय अफसरो का वश चलता तो आज हिन्दुस्तानी साहित्य में प्रेमचन्द का वजूद ही न होता; मगर नदी का प्रवाह किस ने रोका है? हवा का रुख कौन बदल सकता है? 'नवाबराय' की आत्मा ने 'प्रेमचन्द' का चोला पहन कर जन्म लिया। यह नाम इन शब्दो के लेखक ने

तजवीज किया था और चिरकाल तक वे इस नाम से 'ज़माना' में लिखते रहे ।" । इस नाम के विषय में स्वय प्रेमचन्द जी ने मुशी दयानारायण निगम को एक पत्र में लिखा था—'प्रेमचन्द' अच्छा नाम है, मुझे भी पसद है । अफसोस सिर्फ यह है कि पाँच-छ साल में 'नवाबराय' को फिरोग देने (प्रसिद्ध करने) की जो मेहनत की गई वह सब अकारथ (व्यर्थ) गई । यह हज़रत क़िस्मत के हमेशा लडूरे रहे, और शायद रहेंगे ।"

प्रेमचन्द के पिता मुशी अजायबराय डाकखाने मे क्लर्क थे । वेतन पन्द्रह-बीस रुपया मिलता था और चालीस तक पहुँचते-पहुँचते वे रिटायर हो गये । उन के पास कुछ थोडी-सी खेती के लिये ज़मीन भी थी पर वह इतनी कम थी कि बिना नौकरी के गुजर-बसर होना कठिन था । इतने पर भी उन की हालत अच्छी नही कही जा सकती थी । आर्थिक तगी के कारण प्रेमचन्द को वे अपने मन के अनुसार पैसा-टका नही दे पाते थे । प्रेमचन्द ने 'जीवन सार' नामक आत्मकथा में अपनी निर्धनावस्था का चित्र अकित करते हुए लिखा है—"अँधेरा के पुल का चमरौधा जूता मैं ने बहुत दिनो तक पहना है । जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे तब तक उन्हो ने मेरे लिये बारह आने से ज्यादा का जूता कभी नही खरीदा । और चार आने से ज्यादा गज़ का कपडा कभी नही खरीदा । मै सम्मिलित परिवार का था इस लिये मै अपने को अलग नही समझता था । हम अपने चचेरे भाइयो को मिला कर पाँच भाई थे । जब मुझ से कोई पूछता तो मै यही बतलाता कि हम पाँच भाई है । मै गुल्ली-डंडा बहुत खेलता था ।"

यो प्रेमचन्द का जीवन बचपन में बडा दुखी था । पैसे की दृष्टि से ही नही प्यार और दुलार की दृष्टि से भी ।

माँ बीमार रहती ही थी और पिता को घर की चिंता खाये डालती थी। इस पर भी हुआ यह कि प्रेमचन्द आठ वर्ष के ही थे कि उनकी माता चल बसी। मातृहीन बालक के दु:खो का अन्त होना तो दूर पिता ने दूसरी शादी कर ली तो उसे और भी आपत्ति का सामना करना पड़ा। हालत यहाँ तक पहुँची कि पिता जी डाकखाने से जो भी चीज खाने के लिये लाते, चाची की इच्छा रहती कि वे उसे खुद खा जायें। वे उनकी लाई हुई चीजों को पिता के सामने रखती तो पिताजी बोलते—"मै ये चीजें बच्चो के लिये लाता हूँ। जब चाची न मानती तो वे झल्लाकर बाहर चले जाते।"

दरिद्रता, सौतेली माँ के दुर्व्यवहार और पिता की उपेक्षा के बीच प्रेमचन्द का बचपन बीता। उसी मे उन्होंने अपनी पढ़ाई आरम्भ की। वे भी मदरसे में अन्य गाँव के लड़को की तरह पढने बैठे और उर्दू फारसी से पढाई आरम्भ की। वे मौलवी साहब के यहाँ पढ़ने जाते थे। उस समय गुल्ली डडा खेलना, ईख तोड कर चूसना और मटर की फली तोड़ कर खाना उनका नित्य का काम था। तेरह साल की उम्र में जब उनके पिता की बदली गोरखपुर हुई तो वे मिशन हाई स्कूल में दाखिल कराये गये। उनके गोरखपुर के स्कूली जीवन के बारे मे श्री रघुपतिसहाय फिराक ने लिखा है—"उस तब्का (श्रणी) के दूसरे लड़को की तरह प्रेमचन्द भी एक हाई स्कूल में दाखिल हो गये और उनकी तालीम इब्तदाई (प्रारभिक) दर्जों को छोड़ कर गोरखपुर के एक मिडिल स्कूल में शुरू हो गई, जहाँ उनके वालिद मुलाजिम थे। प्रेमचन्द ने मुझ से बताया कि लडकपन में उनकी दोस्ती अपने दर्जे के एक लड़के से हो गई, जो तम्बाकू-फरोश (तम्बाकू बेचने वाले) का बेटा था। रोजाना वे अपने कम उम्र दोस्त के साथ स्कूल के बाद उसके मकान पर जाते थे।

वहाँ तम्बाकू के बड़े-बड़े स्याह पिण्डो के पीछे तम्बाकू फरोश और उसके अहबाब (मित्रगण) बैठ कर बराबर हुक्का पीते और 'तिलस्मे होशरुबा' पढ़ते थ।" स्वय प्रेमचन्द जी ने अपने 'मेरी पहली रचना' शीर्षक लेख में इस विषय में कहा है—"इस वक्त मेरी उम्र कोई १३ साल की रही होगी। हिंदी बिल्कुल न जानता था। उर्दू के उपन्यास पढ़ने का उन्माद था। मौलाना शरर, प० रतननाथ सरशार, मिरजा रुसवा, मौलवी मुहम्मदअली हरदोई निवासी उस वक्त के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे। इनकी रचनायें जहाँ मिल जाती थीं स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही दम लेता था। उस जमाने में रेनाल्ड के उपन्यासो की धूम थी। उर्दू मे उनके अनुवाद धड़ाधड निकल रहे थे और हाथोहाथ बिकते थे। मैं भी उनका आशिक था। स्व० हजरत रियाज ने, जो उर्दू, के प्रसिद्ध कवि है और जिनका ह ल में देहान्त हुआ है, रेनाल्ड की एक रचना का अनुवाद 'हर-मसरा' के नाम से किया था। उसी जमाने में लखनऊ के साप्ताहिक 'अवध पच' के सम्पादक स्व० मौलाना सज्जाद हुसन ने, जो हास्यरस के अमर कलाकार थे, रेनाल्ड के दूसरे उपन्यास का अनुवाद 'धोखा या तिलस्मी फानूस' के नाम से किया था। ये सभी पुस्तक मैंने उसी जमाने में पढी। और प० रतननाथ सरशार से तो मुझे तृप्ति ही न होती थी। उनकी सारी रचनाये मैंने पढ डाली। उन दिनों मेरे पिता गोरखपुर में रहते थे और मं भी वहीं के मिशन स्कूल में आठवीं में पढता था। जो तीसरा दर्जा कहलाता था। रेती पर एक बुकसेलर बुद्धिलाल नाम का रहता था। मै उसकी दूकान पर जा बैठता था और उसके स्टाक से उपन्यास ले लेकर पढ़ता था। मगर दूकान पर सारा दिन तो बैठ न सकता था इसलिये मै उसकी दूकान से अग्रेजी पुस्तको की कुजियाँ और

नोट्स ले कर अपने स्कूल के लड़को के हाथ वेचा करता था और उसकी एवज में उपन्यास दूकान से घर ला कर पढ़ता था। दो-तीन वर्षो में सैकड़ो ही उपन्यास पढ डाले होगे। जब उपन्यास का स्टाक समाप्त हो गया तो मैने नवलकिशोर प्रेस से निकले हुए पुराणो के उर्दू अनुवाद भी पढ़े। और 'तिलस्मी होशरुवा' के कई भाग भी पढ़े। उस वृहद् तिलस्मी ग्रथ के १७ भाग उस वक्त निकल चुके थे और एक-एक भाग वड़े सुपर रायल के आकार के दो-दो हजार पृष्ठो से कम न होगा और इन १७ भागों के उपरान्त उसी पुस्तक के अलग-अलग प्रसंगों पर पचासों भाग छ्प चुके थे। इन में से भी मैने कई पढे। जिसने इस वडे ग्रंथ की रचना की उसकी कल्पना शक्ति कितनी प्रवल होगी, इसका केवल अनुमान किया जा सकता है।"

इस से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द को पढने का वेहद शौक था। वस्तुत जैसा कि श्री हसराज 'रहवर' ने लिखा है, "वेचारे धनपतराय आत्मा को गरमाने वाले मातृ स्नेह से भी वचित थे इसलिए वे 'तिलस्मे होशरुबा' की कहानियों में अधिक रस लेते थे। गो वे तिलस्मी और काल्पनिक थी, पर उनमें आत्मा का स्फूर्ति और प्रेरणा देने वाली शक्ति मौजूद थी।" (प्रेमचन्द—जीवन और कृतित्व पृष्ठ १५)

पद्रह वर्ष की उम्र में प्रेमचन्द का विवाह हो गया। विवाह करते ही पिता स्वर्ग सिधार गये। प्रेमचन्द पर मानो विपत्ति का पहाड़ टूट पडा। वे लिखते है—"उस समय मै नवें दर्जे में पढता था। घर में मेरी स्त्री थी, विमाता थी, उनके दो वालक थे और आमदनी एक पैसे की नही। घर मे जो कुछ पूंजी थी वह पिता जी की छ. महीने की बीमारी और क्रिया-कर्म में खर्च हो चुकी थी। मुझे

उन से हिंदी पढने आता था। उस से उन्हो ने आठ आने उधार लिये थे, जिन्हे उस ने पांच साल बाद उन के गांव में जाकर वसूल किया। एक बार घबरा कर उन्हें अपनी पुस्तक बेचनी पडी। यह कैसी भयानक परिस्थिति थी—"जाडे के दिन थे। पास एक कौडी न थी। दो दिन एक-एक पैसे का खा कर काटे थे। मेरे महाजन ने उधार देने से इकार कर दिया था। सकोचवश मै उस से मांग न सका था। चिराग जल चुके थे। मै एक बुकसेलर की दुकान पर किताब बेचने गया। एक चक्रवर्ती गणित की कुजी दो साल हुए खरीदी थी। अब तक उसे बडे जतन से रखे हुए था पर आज चारो ओर से निराश हो कर मै ने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रुपये की थी पर एक रुपये पर सौदा ठीक हुआ।"

(जीवन सार)

यही वह समय था जब प्रेमचन्द जी के जीवन मे एक नया मोड आया। पुस्तक बेच कर उतरे ही थे कि एक छोटे-से स्कूल के हेडमास्टर से उन की भेंट हुई। जिस ने उन्हें अठारह रुपये मासिक पर अपने स्कूल में सहकारी अध्यापक बना लिया। यह सन् १८९९ की बात है। उस समय उन्हे आनन्द तो हुआ पर आन्तरिक सन्तोष नही क्योंकि वे आगे पढना चाहते थे। लेकिन इस से एक सुविधा यह हुई कि वे सन् १९०२ में ट्रेनिङ्ग कालेज, इलाहाबाद मे भरती हो गए। उन्हो ने दो-तीन वर्ष तक प्राइमरी स्कूल में नौकरी की और इस से सन् १९०२ में वे ट्रेनिङ्ग कालेज, इलाहाबाद में भरती हो गए। सन् १९०५ में उन्हो ने जूनियर सर्टीफिकेट टीचर की सनद पाई। प्रिंसिपल साहब आप से बहुत खुश थे इस लिये जूनियर टीचर्स सनद की परीक्षा पास करते ही ट्रेनिङ्ग कालेज के मोडल स्कूल के हेडमास्टर नियुक्त कर दिये गये। 'जमाना' के

सम्पादक मुशी दयानारायण निगम ने इस बारे में लिखा है—"उन्हो ने सन् १९०४ में जूनियर इगिलश टीचर्स सार्टी-फिकेट का इम्तहान अव्वल दर्जे मे पास किया । उन के सर्टीफिकेट की तारीख पहली जुलाई सन् १९०५ थी, जिस पर मिस्टर जे० सी० कम्पस्टर प्रिंसिपल और मिस्टर वेकन इस्पेक्टर मदारिस इलाहाबाद सरकिल के दस्तखत है, ये शब्द उल्लेखनीय है—Not qualified to teach mathematics, conduct satisfactory and regular. He worked earnestly and well. (अर्थात् गणित पढाने की योग्यता नही, मगर चालचलन सतोपजनक है । समय का पाबद रह कर अपना काम वड़े परिश्रम से भली प्रकार करते रहे ।)

१९१० मे उन्हो ने अग्रेज़ी, दर्शन, फारसी और इतिहास ले कर इन्टर पास किया और १९१९ मे अंग्रेजी, फारसी और इतिहास ले कर बी० ए० किया । यो प्रेमचन्द जी ने अध्यापकी करते हुए भी अपनी शिक्षा पूरी कर ली । वैसे जैसा डाक्टर रामविलास शर्मा ने कहा है—"प्रेमचन्द को जहाँ वास्तविक शिक्षा मिली वे विश्वविद्यालय दूसरे ही थे । उन के अध्यापक लमही के किसान, बनारस के महाजन और कितावों के नोट्स बिकवाने वाले बुकसेलर थे । उन की टेक्स्ट बुक वे सैकडों उपन्यास थे जो उन्हों ने लायब्रेरियों, बुकसेलरो की दुका ो और तम्वाकू वाले दोस्त के घर पढे थे । भले ही वह गणित पढाने के योग्य न रहे हो, वह हिंदुस्तानी समाज का वीजगणित अच्छी तरह समझ गये थे और अपने उपन्यासो में वहुत से प्रश्न हल करने की तैयारी भी कर चुके थे ।" (प्रेचमन्द और उन का युग पृष्ठ ६)

प्रेमचन्द ने अध्यापक के नाते जो काम किया उस में भी

उन्हो ने कभी स्वाभिमान नही खोया । उन्हो ने बनारस, कानपुर, गोरखपुर आदि कई स्थानो पर अध्यापकी की पर कभी किसी की खुशामद नही की । श्रीमती शिवरानी देवी ने 'प्रेमचन्द घर म' नामक पुस्तक में गोरखपुर में इस्पेक्टर के मुआयने की एक घटना का ज़िक्र किया है जो प्रेमचन्द जी के स्वाभिमानी हृदय का परिचय देती है । लिखा है— "स्कूल का इस्पेक्टर मुआयना करने आया था । एक रोज़ तो इस्पेक्टर के साथ रह कर आप ने स्कूल दिखा दिया । दूसरे रोज़ लड़को को गेंद खेलाना था । उस दिन आप नही गये । छुट्टी होने पर आप घर चले आये । आरामकुर्सी पर लेटे दरवाज़े पर आप अखबार पढ रहे थे । सामने ही से इस्पेक्टर अपनी मोटर पर जा रहा था । वह आशा करता था कि उठ कर सलाम करेंगे । लेकिन आप उठे भी नही । इस पर कुछ दूर जाने पर इस्पेक्टर ने गाडी रोक कर अपने अर्दली को भेजा । अर्दली जब आया तो आप गये और पूछा—"कहिये क्या है ?"

इस्पेक्टर—"तुम बडे मगरूर हो ! तुम्हारा अफसर दरवाज़े से निकल जाता है । उठ कर सलाम भी नही करते ।"

"मै जब स्कूल में रहता हूँ तब नौकर हूँ । बाद में मै अपने घर का बादशाह हूँ । यह आप ने अच्छा नही किया । इस का मुझे अधिकार है कि आप पर केस चलाऊँ ।"

मित्रो की सलाह पर उन्हो ने केस तो नही चलाया पर इस घटना से वे बहुत दिनो तक बेचैन-से रहे ।

स्कूलो के सब-डिप्टी इस्पेक्टर की हैसियत से उन्हो ने छ-सात वर्ष विताये । वहाँ उन्हो ने बडी ईमानदारी से काम किया । उन दिनो की उन की दिनचर्या इस प्रकार थी—

"सुबह चार बजे उठते थे। हुक्का पीकर पाखाना जाते, हाथ मुँह धोते और जो मिल जाता उसी का नाश्ता करते। चुस्ती के साथ बैठकर लिखते। कलम मजदूरों के फावड़े की तरह तेजी से चलती थी। उसके बाद पाखाना जाना फिर खाना खाना। दौरे पर भी साहित्य का काम उन्होंने नही छोड़ा।" जब मुआयना करना होता तो उस काम को मुदर्रिसो के हाथ दे देते। वे कहते—"क्या करूँ मै जो मुआयना करता हूँ तो मुदर्रिस लोग लड़कों के सामने पर्चा छोड़ आते है। कम से कम जिससे यह तकलीफ उन्हे न उठानी पड़े। वे बेचारे खुश भी रहते है। अच्छा मुआयना होने पर उनकी तरक्कियाँ भी होती है।" (प्रेमचन्द घर में पृष्ठ १५) ऐसे कोमल हृदय थे प्रेमचन्द, जो सदा दूसरो के सुख का ख्याल रखते थे और खुद कष्ट सहते थे।

प्रेमचन्द के जीवन की एक उल्लेखनीय घटना उनका दूसरा विवाह है। उनका पहला विवाह पन्द्रह साल की उम्र में हो गया था, यह हम कह चुके है। उनकी पहली पत्नी चाहती थी कि वह अपने मन के अनुकूल खर्च करे, घर की मालकिन बने और प्रेमचन्द उसी के कहने में चलें। घर में विमाता और उसके बच्चों का शासन था और प्रेमचन्द उससे बाहर निकल न सकते थे। फल यह हुआ कि पहली पत्नी से उनकी नही पटी। आये दिन खटपट होती रहती। उस समय प्रेमचन्द स्कूल मास्टर थे। उनको बडा क्लेश था। दिन भर मेहनत करे और पत्नी का यह हाल। एक दिन झगडा बढा और पत्नी अपने मैके चली गई। उसके बाद न प्रेमचन्द उसे लेने गये और न वह आई। तब प्रेमचन्द ने दूसरा विवाह किया। उस समय वे चाहते तो रुपया पैसा लेकर कुमारी कन्या से भी विवाह कर सकते थे पर एक आदर्श की

खातिर उन्होने श्रीमती शिवरानी देवी से, जो बाल विधवा थी, से विवाह किया। और वह भी घर वालो की राय के विरुद्ध। श्रीमती शिवरानी देवी से उनकी अच्छी पटी। अपनी पहली पत्नी को भी वे हर महीने खर्च भेजते रहे। ऐसा लगता है कि उनके मन में उसे छोडने का दुख था और उसी को कम करने के लिये वे कर्तव्य के निर्वाह के रूप मे खर्च भेजते थे। यह दूसरा विवाह उन्होने सन् १६०५ में किया।

सन् १६२० में महात्माजी के प्रभावशाली व्याख्यान के कारण उन्होने अपनी सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। बात यह थी कि वे बहुत दिन से बीमार रहते थे। डिप्टी इन्स्पेक्टरी मे उन्हे दौरे पर जाना पडता था, जिसके कारण खाने-पीने की असुविधा होने से उनका पेट खराब हो गया और उन्हे पेचिश हो गई। घर की चिन्तायें अलग थी। प्रेमचन्द का मन डिप्टी इन्स्पेक्टरी से ऊबा और उन्होने अध्यापक बनने का निश्चय किया। यो सन् १६१५ में गवर्नमेण्ट स्कूल बस्ती में असिस्टेंट टीचर हो गये। सन् १६१८ में गोरखपुर आये। अध्यापको में वे सफल थे पर फिर भी उनका मन साहित्य सेवा के लिये छटपटाता था। लिखते तो थे पर गुलामी का अनुभव बराबर होता था। बडे सोच-विचार के बाद उन्होने इस्तीफा दे दिया। यह इस्तीफा प्रेमचन्द ही दे सकते थे, जिनको महान् बनना था। लगी लगाई सरकारी नौकरी, पेंशन का लोभ साथ में। उसे छोड देना बडे जीवट का काम है। प्रेमचन्द ने स्वय इस बारे मे लिखा है—"यह सन् १६२० की बात है। असहयोग आन्दोलन जोरो पर था। जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड हो चुका था। उन्ही दिनो महात्मा गाधी ने गोरखपुर का दौरा किया। गाजी मियाँ के मैदान में अच्छा प्लेटफार्म तैयार

किया गया। दो लाख से कम का जमाव न था। क्या शहर, क्या देहात, श्रद्धालु जनता दौड़ी चली आती थी। ऐसा समारोह मैंने अपने जीवन मे कभी नही देखा था। महात्मा जी के दर्शनो का यह प्रताप था कि मुझ जैसा मरा हुआ आदमी भी चेत उठा। उसके दो ही चार दिन बाद अपनी वीस साल की नौकरी से इस्तीफा दे दिया।"

इस्तीफा देकर उन्होने पहले तो गोरखपुर मे श्री महावीर प्रसाद पाद्दार के साथ चरखा का काम किया पर फिर वे अपने गाँव चले आये। गाँव आकर प्रेमचन्द साहित्य-सेवा में डूब गये। श्रीमती शिवरानी देवी ने उनकी बडी हिम्मत बधाई। वे उनके आदर्शो के अनुकूल ही आगे बढ़ी। नौकरी से इस्तीफे का अन्तिम निर्णय शिवरानी देवी ने इस दृढता से किया था—"आप गुज़ारे की चिंता न करें, वह चलता ही रहता है। अगर देश कुरबानी चाहता है तो उसे देने में देर नहीं करनी चाहिए।"

एक बार अलवर के महाराज ने पाँच-छ आदमी भेजे और चार सौ रुपये महीना वेतन, बँगला और मोटर देने का प्रस्ताव रखा। प्रेमचन्द जी ने उनको तो यह लिख भेजा—"मैंने अपना जीवन साहित्य सेवा के लिये लगा दिया है। मै जो कुछ लिखता हूँ, उसे आप पढते है इसके लिये आपको धन्यवाद देता हूँ। आप जो धन मुझे दे रहे है, मै उसके योग्य नहीं हूँ।" पर शिवरानी देवी से झूठ-मूठ सलाह करने के लिये कहा—"चलूँ कुछ दिन बँगले, मोटर का शौक तो पूरा कर लूँ। मेरी कमाई में तो इनकी गुंजाइश नही।" इस पर शिवरानी देवी ने जवाव दिया—"यह इसी तरह हुआ जिस तरह कोई वेश्या अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिये चकले में वैठे। फिर जिसने मज़दूरी करना अपना उद्देश्य

बना लिया हो उसके लिये मोटर, बँगले की इच्छा कैसी ?" वे सदा उनको गृहस्थी क काम से दूर रखती थी और लिखने का वातावरण बनाये रखती थी। स्वय कम पढी-लिखी होने पर भी उन्होने प्रेमचन्द के साथ अध्ययन की प्रेरणा प्राप्त की और कहानियाँ लिखने लगी।

१९२४ में प्रेमचन्द 'माधुरी' के सम्पादन विभाग में लखनऊ चले गये। इस से पहले डेढ साल तक वे 'मर्यादा' (बनारस) में भी सम्पादक रहे थे। १९३०-३१ में वे लखनऊ छोडकर बनारस आ गये। वही उन्होने एक छोटा-सा प्रेस खडा किया और 'हस' मासिक तथा 'जागरण' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। इन पत्रो मे उनको बडा घाटा हुआ। उनकी आर्थिक स्थिति कैसी थी, यह उन्होने प० बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में इस प्रकार लिखा—'आमदनी की कुछ न पूछिए। समस्त प्रारम्भिक पुस्तको का प्रकाशन अधिकार पब्लिशर्ज को दे दिया। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'सप्तसरोज' और 'सग्राम' के लिये हिंदी पुस्तक एजेसी ने एक मुश्त तीन हजार रुपये दे दिये थे और निबन्ध के लिये अब तक शायद दो सौ रुपये मिले। दुलारेलाल ने 'रगभूमि' के अठारह सौ रुपये दिये थे। दूसरे सग्रह के लिये सौ दो सौ रुपये मिल गये होगे। 'कायाकल्प', 'आजाद कथा', प्रेमतीर्थ', 'प्रेमप्रतिमा', 'प्रतिज्ञा' मैने खुद छापी मगर मुश्किल से छ सौ रुपये वसूल हुए है। रचनाओ से फुटकर आमदनी २५) महीना हो जाती है। मगर कभी-कभी इतनी भी नहीं। अनुवाद से शायद दो हजार से अधिक नही मिला। आठ सौ रुपये में 'रग-भूमि' और 'प्रेमाश्रम' दोनो के अनुवादो का मामला हो गया। 'हस' और 'जागरण' के प्रकाशन में लगभग दो सौ रुपये महीने का नुकसान हो रहा है।" इससे घबराकर ही

वे सिनेमा में गये पर उन को वहाँ का जीवन पसंद नही आया । सिनेमा के बारे में उन्हो ने ३० अप्रैल १९३५ को श्री जैनेन्द्रकुमार को एक पत्र में लिखा—"मै जिन इरादो से आया था उन मे एक भी पूरा होता नज़र नही आता । यह प्रोड्यूसर जिस ढंग की कहानियाँ बनाते आये है, उस लीक से जौ भर नही हट सकते । अश्लील मज़ाक को यह लोग तमाशे की जान समझते है । अद्भुतता ही मे उन का विश्वास है । राजधानी, उन के मंत्रियो के षड्यंत्र, नकली लडाई आदि ही उनके मुख्य साधन है । मैने सामाजिक कहानियाँ लिखी है, जिन्हें शिक्षित समाज भी देखना चाहे । लेकिन फिलम बनाने मे इन लोगो को सदेह होता है कि चले या न चले । यह साल तो पूरा करना ही है । कर्जदार हो गया हूँ । कर्ज पटा दूंगा मगर और कोई लाभ नही । उपन्यास (गोदान) के अतिम पृष्ठ लिखने बाकी है । इधर मन ही नही जाता । अपने पुराने अड्डे पर जा बैठूँ वहाँ धन नही मगर संतोष अवश्य है । यहाँ तो जान पड़ता है, जीवन नष्ट कर रहा हूँ ।" और प्रेमचन्द अपने अड्डे पर लौट आये । आखिरी दिनो में उन को घाटे के कारण 'हस' भारतीय साहित्य परिषद् को देना पड़ा पर उस से वे सन्तुष्ट न थे ।

सन् १९३६ में १६ जून को बीमारी के शिकार हुए तो फिर उठे ही नही और ८ अक्टूबर १९३६ को चल बसे । बीमारी में भी उन का लिखना जारी रहा । 'मगलसूत्र' नामक अधूरा उपन्यास बीमारी मे ही लिखा । उन के पीछे उन के दो पुत्र श्रीपतराय और अमृतराय रह गये । एक पुत्री थी जिस की शादी वे पहले ही कर चुके थे ।

इस तरह प्रेमचन्द का जीवन इतने उतार चढावो से भरा आ है कि वह स्वयं एक उपन्यास ह । वे गरीबो और

वे वास्तविक जीवन मे भी उसी भाव से जीते थे । श्रीमती शिवरानी देवी ने लमही गांव मे उन के रहन-सहन का जो चित्र दिया है वह इस बात का प्रमाण है। वे लिखती है—"आप अपने गाँव में रहते तो अपने दरवाजे पर झाड़ू लगाते । कभी-कभी मै उन्हे रोकती। छोटे बच्चो को दरवाज़े पर बिठा कर चार बजे शाम को उन के पास मिट्टी इकट्ठा कर देते, पत्तियाँ इकट्ठी कर देते, सिकटे इकट्ठा कर देते और लडको को खेलने के ढग सिखाते। उस के बाद जब गाँव के काश्तकार इकट्ठे होते तो उन से बातें करते, झगडा निपटाते, बच्चो से खेलते भी जाते । कोई नये कायदे-कानून बनते तो काश्तकारो को समझाते । उन सबो के साथ तो बिल्कुल काश्तकार हो जाते थे । उम्र की बडाई के लिहाज़ से जिस का जैसा सम्बन्ध होता, सदा वैसा आदर देते । चाहते थे कि गाँव एक किला बन जाय। उपन्यास के चित्रो की भाँति सजीव कर देना चाहते थे ।" (प्रेमचन्द घर में पृष्ठ ९२)

इस भावना के कारण वे अपना सारा काम स्वय करते थे । नौकरो को सहायक मानते थे । उन के दु ख दर्द में अपना दु ख दर्द भूल जाते थे । उन में जो बडे होते थे उन की इज्जत बुज़ुर्गों की तरह करते थे । यही क्यो किसी भी दु खी और गरीब को देख कर उन का दिल पिघल जाता था । एक बार उन्हें गरम कोट बनवाना था । शिवरानी देवी ने उन्हें रुपये दिये पर वे रुपये उन्हो ने प्रेस के मजदूरो में बाँट दिये । प्रेस में हडताल हुई तो उस का दोष मैनेजर पर रखा । एक साहब ने कहा कि १५) की ज़रूरत है तो अपनी तगी का ख्याल न करके भी उसे रुपये दिलवा दिये । एक व्यक्ति को १००) की ज़रूरत थी । कहना यह था कि

१००) हों तो नौकरी मिल जाये। दो महीने मे चुकाने का वादा किया। प्रेमचन्द ने उस के जीवन-निर्माण का ख्याल कर के रुपये दे दिये। पर कुछ दिन वाद वह उन रुपयो का तीया-पांचा कर उन के घर आ डटा। जब उस से पीछा छुडाने का सवाल आया तो प्रेमचन्द ने उसे चुरा कर ५०) और दिये। यही क्यो जब उस ने पटने पहुंच कर शादी की तो प्रेमचन्द जी ने उस की बीवी के लिये सोने की चूड़ियां, गले की जजीर, कर्णफूल और दो-तीन रेशमी साडियाँ आदि चीजें खरीदी और १००) नकद साथ मे रखकर भेज दी। स्वयं कितना कष्ट इस परोपकार के वाद भोगा होगा इस की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

उन की आदतो के बारे मे मुशी दयानारायण निगम ने लिखा है—"प्रेमचन्द खाने-पीने में परहेज के आदी न थे। यही कारण है कि पेट के रोग का सफलता से मुकावला नही कर सके। भोजन के वारे मे उन से देर तक कोई पावदी न होती, तनिक-सी प्रेरणा पर वद्परहेज़ी कर वैठते थे। मिज़ाज भी कभी चिडचिड़ा हो जाता था। प्रायः तनिक-सी बात इच्छा के विरुद्ध हो जाने पर खिन्न हो जाते थे लेकिन गर दूसरे व्यक्ति ने अपनी गलती मान ली, अथवा खिन्नता को दूर करने की तनिक भी कोशिश की तो फौरन पानी हो जाते थे। जब उन को यह ख्याल होता कि दूसरो को उन की कोई परवाह नही तो उन के दिल पर ज़रूर चोट लगती थी।"

प्रेमचद जी सच्चे लेखक थे। लिखने के लिये उन्हो ने अपनी नौकरी छोडी थी, लिखने के लिये ही प्रेस चलाया था, लिखने के लिये ही वे फिल्म में गये थे। जब से लिखना आरभ किया कभी लिखना छोडा भी नही। वडे-वडे प्रलो-

भनो को लिखने के लिये ठुकरा दिया । एक बार रायसाहब का खिताब मिलने की बात थी तो आप ने कह दिया कि मैं जनता का आदमी हूँ और उसी का खिताब मुझे चाहिए । वे चाहते तो कौंसिल में जा सकते थे पर न गये । लिखने में बीमारी भी बाधा न डाल पाती थी । 'प्रेमाश्रम' का एक बडा भाग उन्हो ने बीमारी मे लिखा । 'मगल-सूत्र' का सूत्रपात भी बीमारी में हुआ । मरते-मरते भी वे 'आज' कार्यालय मे गोर्की-दिवस की मीटिंग मे शामिल होने गये । शिवरानी देवी ने ताकीद कर रखी थी कि वे बीमारी में न लिखें पर वे रात को धीरे से उठ कर अपनी कापी, कलम, दवात उठा लाते और जाड़े के दिनो में तो चारपाई पर रजाई ओढे ही लिखते रहते । जब कभी रात-रात भर लिखने पर शिवरानी देवी कुछ कहती तो जवाब देते—"कलम चलाना तो मज़-दूरी का काम है । न चलाऊँ तो क्या खाक खाऊँ, महात्मा गाधी भी तो खाना ही पाते है ।" (प्रेमचद घर में पृष्ठ २०३) अभिप्राय यह कि जैसे गाधी त्याग और तपस्या से राजनीति में काम कर रहे थे वैसे ही वे साहित्य मे भी तपस्या के हामी थे । वे अपने समक्ष दीपक का आदर्श रखते थे और कहते थे—"दीया होता है उस का काम है रोशनी करना, सो वह करता है, उस से किसी का लाभ होता है या हानि, इससे उस की कोई बहस नही । उस में जब तक तेल और बत्ती रहेगी तब तक वह अपना काम करता रहेगा । जब तेल खत्म हो जाएगा तब ठण्डा हो जाएगा ।" वे लेखक का दर्जा बहुत ऊँचा मानते थे । बिना किसी भय के वे आलोचना करते थे ।

नए लेखको के उठाने मे प्रेमचद ने स्व० आचार्य प० पद्मसिंह शर्मा और महावीर प्रसाद द्विवेदी का काम किया ।

वे हस के संपादक होने से पहले और वाद में वरावर नये लेखकों की रचनायें पढ़ते और उन्हे सलाह मशवरा देते थे। उन्हो ने कितने ही नये लेखको का निर्माण किया। वे नये लेखको की कैसे सहायता करते थे इस के लिये श्री उपेन्द्रनाथ अश्क को लिखे एक पत्र को उद्धृत करना उपयोगी होगा। वह पत्र यो है—

प्रिय वन्धु,

आशीर्वाद! मुआफ़ करना, तुम्हारे दो खत आये। 'भिश्ती की वीवी' मै ने पढ़ा और वहुत पसंद किया। तुम ने उर्दू का एक छोटा-सा चुटकला भेजा था। मै उसे हिंदी में दे रहा हूँ। मगर हिंदी में जो चीजें तुम ने अव तक भेजी है उन में अभी ज़वान की वड़ी खामी है। हिंदी के पत्र देखते रहो तो साल छः महीने में ये त्रुटियाँ दूर हो जाएंगी। कोई कहानी हमारे लिए हिंदी ें लिखो, मगर कहानी हो फंसी नही। किसी महान् लेखक का जीवन चरित्र हो तो उस से भी काम चल सकता है। मगर मेरी सलाह तो यही है कि वहुत लिखने के मुकाब्ले मे लिट्रेचर और फिलासफी का अध्ययन करते जाओ क्योकि इस वक्त का अध्ययन जिंदगी भर के लिए उपयोगी होगा।

और तो सव खरीयत है।

शुभेच्छु
धनपतराय

'हंस' के द्वारा रूस और मार्क्सवादी विचारधारा की ओर सव से पहले लेखको का ध्यान प्रेमचंद ने आकर्पित किया। वे वड़े जागरूक थे। देश-विदेश की राजनीतिक हलचलो और साहित्यिक गतिविधियो पर 'हंस' की टिप्पणियाँ उन के व्यापक और गभीर दृष्टिकोण का परिचय

देती । वे धार्मिक मतमतातरो, साम्प्रदायिक कट्टरता और अधविश्वासो के कट्टर शत्रु थे । वे घोषित करते है—'मेरे लिये कोई मजहब नही । राम, रहीम, बुद्ध, ईसा सभी बराबर है । इन महापुरुषो ने जो कुछ किया सब ठीक किया । उन के अनुयायियो ने उस को उल्टा किया । कोई धर्म ऐसा नही जिस में इसान को हैवान होना पडे । इसी से मै कहता हूँ कि मेरा कोई मज़हब नही ।" (प्रेमचन्द घर में) उन के लिए हिंदू और मुसलमान दोनो बराबर थे । ईश्वर के बारे में उन का मत था—"भगवान् मन का भूत है, जो इसान को कमजोर कर देता है । स्वावलम्बी मनुष्य की ही दुनियाँ है । अंधविश्वास में पडने से तो रही-सही अक्ल भी मारी जाती है ।" इसी सबध में १६३५ में श्री जैनेन्द्र को एक पत्र में लिखा था—"ईश्वर पर विश्वास नही आता, कैसे श्रद्धा होती है । तुम आस्तिकता की ओर जा रहे हो । जा नही रहे हो, पक्के भगत बन रहे हो । मै सदेह में पक्का नास्तिक होता जा रहा हूँ ।"

वे सच्चे मानव थे और मानव ही रहना चाहते थे । मानव बने रहने के लिए वे सदा गरीबी मे भी सघर्ष करते रहे । एक बार जब प० बनारसी दास चतुर्वेदी ने उन से उन की अभिलाषाओ के बारे मे पूछा तो उन्होने लिखा था—' मेरी अभिलाषायें बहुत सीमित है । इस समय सब से बडी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतत्रता-सग्राम में सफल हो । मै दौलत और शोहरत का इच्छुक नही हूँ । खाने को मिल जाता है । मोटर और बगले की मुझे इच्छा नही है । हाँ यह ज़रूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्चकोटि की रचनाएँ छोड जाऊँ । लेकिन उन का उद्देश्य भी स्वतत्रता प्राप्ति ही हो ।" (प्रेमचद जीवन और कृतित्व से) सच तो यह है

कि प्रेमचन्द संतों की तरह केवल देने के लिये ही उत्पन्न हुए थे और जीवन भर देते ही रहे। मानवता का इतना बड़ा हिमायती हमारे साहित्य मे वर्तमान युग में शायद ही कोई दूसरा हुआ हो।

प्रेमचन्द को पढ़ने का वडा शौक था। हम देख चुके हे कि किशोरावस्था मे ही वे इतना पढ चुके थे, जितना अपने समस्त जीवन में भी लोग अक्सर कम पढ पाते है। 'तिलस्म होशरुबा' और 'चन्द्रकान्ता' सतति' से लेकर रेनाल्ड के उपन्यास और पुराणो के उर्दू अनुवाद वे पढ चुके थे। जीवन में सघर्ष था पर फिर भी उनके कुछ सपने थे। उन सपनो को वे लेखक वनकर ही पूरा कर सकते थे इसलिए उन्होने लेखक वनने का व्रत लिया। अपने साहित्यिक जीवन के विषय मे उन्होनें लिखा है—"मैने पहले पहल सन् १६०७ में गल्प लिखना शुरू किया। डाक्टर रवीन्द्रनाथ के कई गल्प मैने अंग्रेजी में पढे थे, जिनका उर्दू अनुवाद कई पत्रिकाओं मे छपवाया था। उपन्यास तो मैंने १६०१ से लिखना शुरू किया था। मेरा एक उपन्यास १६०२ में निकला और दूसरा १६०४ में लेकिन गल्प १६०७ से पहले मैंने एक भी न लिखी। मेरी पहली कहानी का नाम था 'ससार का सवसे अनमोल रत्न'। वह सब से पहले १६०७ में 'ज़माना' उर्दू में छपी। उसके वाद मैंने 'ज़माना' मे चार-पाँच कहानियाँ और लिखी।" लेकिन मुंशी दया नारायण निगम चहते है कि "जहाँ तक याद पड़ता है आपने सब से पहले एक तनकीदी मज़मून (आलोचनात्मक लेख) १६०५ में जमाना में शाया होने के लिये और एक नाविल का मसौदा वगरज मशविरा (सलाह के लिये) भेजा था।" जो कुछ भी हो प्रेमचन्द ने पहले उपन्यास लिखे और फिर कहानी। उन का पहला उपन्यास 'कृष्णा' था

जो इडियन प्रेस प्रयाग स छपा था। दूसरा उपन्यास 'हमखुरमा हम कबाब' था। श्री हसराज रहबर ने 'हमखुरमा हम कबाब' को ही पहला उपन्यास माना है जब कि मुशी जगेश्वरप्रसाद वर्मा 'बेताब' बरेली के अनुसार उनका पहला उपन्यास 'प्रेमा' था। परन्तु यह तो प्रेमचन्द के विधिवत लेखन का आरम्भ है। उससे पहले भी वे लिखने लग गये थे। अपनी 'पहली रचना' शीर्षक लेख मे उन्होने लिखा है कि उनकी पहली रचना एक प्रहसन था, जो उन्होने अपने मामा के रोमास के बारे में लिखा था। उनके मामा का एक चमारी से प्रेम था। वे प्रेमचन्द पर सदा रोब जमाते रहते थे। एक बार जब चमारी से प्रेम का वरदान पाने का प्रयत्न किया तो वे चमारो द्वारा खूब पीटे गये। प्रेमचन्द जी ने सोचा कि सम्भवत अब वे कुछ नर्म हो जायेंगे पर उनकी आदत न गई। प्रेमचन्द ने उनको झुकाने के लिये एक नाटक इस घटना पर लिखा। वह सुबह स्कूल जाते समय वह नाटक मामू साहब के सिरहाने रख गये। छुट्टी मिलने पर वह यह सोचते हुए लौट रहे थे कि देखे नाटक पढन के बाद उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई है। लेकिन घर पहुँचे तो देखा कि न मामू साहब वहाँ मौजूद है न वह नाटक। शायद वे जाते समय उनकी 'पहली रचना' को अग्नि देवता की भेट कर गये थे।" उस समय प्रेमचन्द की उम्र बारह-तेरह साल की थी।

सन् १९१४ तक प्रेमचन्द लेखन में अपना मार्ग निश्चित नही कर पाये थे। उन्होने अपनी इस मानसिक स्थिति का चित्र यो दिया है—"मुझे अभी तक यह मालूम नही हुआ कि कौनसी तर्ज़े-तहरीर (रचना शैली) अख्तियार करूँ? कभी तो बकिम की नकल करता हूँ, कभी आजाद के पीछे चलता हूँ। आजकल टाल्स्टाय के किस्से पढ चुका हूँ तब से कुछ

ग की तरफ तबियत मायल (झुकी) हुई है। यह
री है और क्या ? यह किस्सा जो मैं रवाना कर रहा
मैं 'लुत्फे-तहरीर' (शब्दाडम्बर) की मुतलक-कोशिश
ो गई। सीधी-सादी बाते लिखी है। मालूम नही, आप
करेंगे या नही।" (प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व में
दयानारायण निगम के वक्तव्य से पृष्ठ ३७)। इससे
है कि प्रेमचन्द बराबर प्रयोग करते रहे। हमें तो ऐसा
है कि जैसे गाँधी जी अपने जीवन के अन्तिम क्षणो
ाजनीति में प्रयोग करते रहे, वैसे ही प्रेमचन्द अपनी
रचना तक प्रयोग करते रहे। इन प्रयोगो के कारण
विकासशील लेखक बन पाये। अक्सर प्रतिभाशाली
साहित्य में तीर की तरह आगे आते है और अपनी
र्ण कृतियो से हलचल मचा देते है पर वे आरम्भिक
ओ से आगे जीवन भर नही बढ पाते। कारण यही है
अपने को पूर्ण समझकर अपनी खामियों से कतराते
र युग और समाज की नब्ज को न पहचान कर अपने
तर की दुनियाँ में चक्कर लगाते रहते है। प्रेमचन्द
विपरीत जिस कठिनाई से पढे थे, उसी कठिनाई से
बने थे। उन में जीवन के प्रति सच्चा अनुराग था तो
य के प्रति भी और इसी से वे निरतर विकासमान
उनकी प्रकाशन की दृष्टि से पहली महत्वपूर्ण रचना
वतन' थी, जिसमें 'ससार का सबसे अनमोल रत्न' के
रिक्त चार कहानियाँ और थी। यह सन् १९०९ में
ात हुई थी। इसमें देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम की
ायाँ थी। ये कहानियाँ छपी तो सरकार को उनमें
शन' अर्थात् राजद्रोह की गंध आई। वे उन दिनों
इस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स थे। अफसरो के कानो तक
गई। पेशी हुई। फैसला हुआ कि भविष्य में लिखना

बन्द किया जाय और 'सोज़वतन' की जितनी भी प्रतियां हैं सब जलादी जाय। प्रेमचन्द क्या करते? सोज़े वतन की प्रतियां तो जलादी गई पर लिखना बद न हुआ। अब तक वे नवाबराय के नाम से लिखते थे। अब प्रेमचद नाम से लिखने लगे।

हिंदी मे सब से पहला कहानी सग्रह 'सप्त सरोज' सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ था, जिसको भूमिका मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने लिखी थी। सन् १९१६ मे उनका 'सेवा-सदन' निकला। यह उपन्यास गारखपुर में श्री महावीरप्रसाद पोद्दार को प्रेरणा से लिखा गया था। इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही प्रेमचद-हिंदी के सवश्रेष्ठ उपन्यासकार मान लिये गये। उसका बड़े ज़ार से स्वागत हुआ। उससे प्रेमचद को ऐसा सतोष हुआ कि फिर वे हिंदी के ही हो रहे। उससे पहले हिंदी से उर्दू और उर्दू से हिंदी में अनुवाद करते रहते थ। उसके छ साल बाद सन् १९२२ में 'प्रेमाश्रम', सन् १९२३ में 'निर्मला', सन् १९२५ में 'रगभूमि', सन् १९२८ में 'कायाकल्प', सन् १९३१ में 'गबन', सन् १९३२ में 'कर्मभूमि', सन् १९३६ में 'गोदान' आदि उपन्यास निकले। 'मंगलसूत्र' नामक उपन्यास वे अधूरा छोड़ गये हैं। इन एक दर्जन के लगभग श्रेष्ठ उपन्यासो के अतिरिक्त उन्होने तीन सौ के लगभग कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी कहानियो के सग्रहो में 'सप्तसरोज', 'नवनिधि', 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेमतीर्थ', 'प्रेमपचीसी', 'प्रेमद्वादशी, 'प्रेमप्रसून', 'प्रेरणा', 'पाँच फूल', 'समर यात्रा', 'मानसरोवर' (४ भाग), 'अग्नि', 'समाधि', 'कफन' और 'शेष कहानियाँ' आदि प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त उन्होने नाटक लिखे, निबन्ध लिखे, बालोपयोगी पुस्तकें लिखी। अनुवाद किये। हस और जागरण में जो टिप्पणियाँ लिखी वे तो साहित्य की अमूल्य निधि है और यह सिर्फ

हिंदी की बात है। उर्दू के भी वे सर्वश्रेष्ठ कथाकार और निबधकार माने जाते है। यो प्रेमचंद की साहित्य सेवा आकार की दृष्टि से भी विशालता लिए हुए है, गुण की दृष्टि से तो वह महान् है ही।

साहित्य, समाज, राजनीति और धर्म किसी भी क्षेत्र के आन्दोलनो और प्रतिक्रियाओ का प्रतिपालन प्रेमचंद के इस विपुल साहित्य में मिलेगा। युग के साथ चलने वाले इस साहित्यकार ने स्वतत्र श्रमजीवी का जीवन विताया। उस की तुलना रूस के सर्वश्रेष्ठ लेखक गोर्की से की जाती है। कुछ बातों को छोड़ कर जीवन की कटुता और विष का पान जैसा गोर्की ने किया था वैसा ही प्रेमचद ने भी। गोर्की भी जैसे जनता के साथ जिया-मरा था वैसे ही प्रेमचंद भी। जैसे गोर्की ने वर्तमान रूस की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओ को अपने उपन्यासो में उपस्थित किया वैसे ही प्रेमचद ने भारत की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं को अपने कथा साहित्य का आधार बनाया। वे दोनों ही जनता के सच्चे हमदर्द और साथी थे।

प्रेमचंद हमारी हिंदी भाषा के शृंगार है। वर्तमान युग के कलाकारो में वही एक ऐसे व्यक्तित्वशाली युगपुरुष हुए है, जिन की कृतियो के अनुवाद देश और विदेश की अगणित भाषाओ में हो चुके है और हो रहे है। प्रेमचंद ने जो परम्परा डाली वह आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। वे एक प्रगतिशील साहित्यकार के रूप में सदैव हमें प्रेरणा देते रहेंगे।

प्रेमचंद के उपन्यास

प्रेमचंद ऐसे कथाकार थे, जिन्हो ने सब मे पहले अपने युग की सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति की समावनाओ को अपने साहित्य में वाणी दी । उन से पहले लेखक जैसे अपने उस समाज की आवश्यकताओ की ओर, जिस में वे रहते थे, देखते ही नही थे । राजनीति से तो जैसे वे कोसो दूर थे । 'रक्त मडल' जैसे उपन्यासो में कुछ आतक-वाद की झलक भले ही मिल जाए पर समस्त समाज के जीवन के भीतर उठने वाले ज्वार को उन की कल्पना और अद्भुत के प्रति अभिरुचि ग्रहण करने में असमर्थ थी । प्रमचद सघर्षों में पले थे । समाज परिवार और व्यक्ति के पारस्परिक सबधो में अर्थ के अभाव से जो कटुता आ जाती है, उस का उन्हें निजी अनुभव था । वे बचपन से ले कर जवानी ही नही प्रौढावस्था तक समाज की भीषण परिस्थिति का शिकार रहे । एक ओर अपनी गरीबी और बेबसी का जीवन था और दूसरी ओर राष्ट्रसेवा की लगन भी थी । परिणाम यह हुआ कि बिना सोचे-समझे असहयोग आन्दोलन के दिनो में उन्हो न सरकारी नौकरी को लात मारी । नौकरी क्या छोडी वे एकदम सामाजिक जीवन की कटुता से राष्ट्र की व्यापक पीडा को ले कर साहित्य का शृगार करने लगे । और उस के बाद तो जैसे वे अपने को राजनीति से अलग कर के देख ही नही सके । यही कारण है कि उन की कृतियो मे गाधी युग का भारत

मुखरित हो उठा है। अपनी प्रारंभिक कृतियो में वे समाज-सुधार की आर्यसमाज द्वारा प्रचलित भावनाओ को ले कर कथा-क्षेत्र में आए थे। राष्ट्र समाज से बड़ा है इस लिए जब वे राष्ट्रीय जोवन का चित्र अकित करने लगे तब समाज स्वय उस के अंतर्गत आ गया। दृष्टिकोण की इस व्यापकता ने प्रेमचद को जनता का सच्चा साहित्यकार बना दिया।

प्रेमचंद ने ग्यारह उपन्यास लिखे हैं—१—वरदान (सन् १९०२), २—प्रतिज्ञा (१९०५-६)*, ३—सेवा-सदन (१९१६), ४—प्रेमाश्रम (१९२२), ५—रंगभूमि (१९२४), ६—निर्मला (१९२७), ७—कायाकल्प (१९२८), ८—गबन (१९३०), ९—कर्म भूमि (१९३२), १०—गोदान (१९३६) और ११—मगल-सूत्र (अधूरा)। इनमें से प्रतिज्ञा, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्म भूमि और गोदान उर्दू में क्रमशः बेवा, बाजार-ए-हुस्न, गोशा-ए-आफियत, चौगाने हस्ती, पर्दा-ए-मिजाज, गबन, मैदाने अमल और गोदान नाम से प्रकाशित हुए थे। जब प्रेमचंद ने लिखना शुरू किया तब देश में सामाजिक-सुधार की ओर विशेष रुचि थी और राजनैतिक आन्दोलन का बीज अभी धरती फोड़ कर खुली हवा में साँस लेने को ज़ोर लगा रहा था। सन् १९०५ के बगभंग आन्दोलन और स्वदेशी के प्रचार के साथ उस के अंकुर निकले थे। प्रथम महायुद्ध ने उस के विकास को रोकने की चेष्टा की पर सौभाग्य से अग्रेज़ों की बेईमानी ने देश को फिर

*यह प्रेमचद का पहला उपन्यास है, जो उर्दू में 'हम खुरमा हम सवाब' के नाम से निकला था। कहते हैं कि यह सन् १९०१, १९०४, १९०५ तीन बार लिखा जा कर हिंदी में परिवर्द्धित रूप में 'प्रतिज्ञा' नाम से छपा। हिन्दी में इस का पहला नाम 'प्रेमा' था।

जागृत कर दिया और असहयोग आन्दोलन का १९२०—२१ का मोर्चा जम गया। पहली बार सगठित रूप में देश ने विदेशी शासन से लोहा लिया। एक सिरे से दूसरे सिरे तक देश का कण-कण जैसे बगावत के लिये तैयार हो गया पर चौरी-चौरा-काड ने गांधी जी की अहिंसा को धक्का दिया और आन्दोलन स्थगित हुआ। जनता में निराशा आई पर आतकवादियो की कार्यवाहियां बढी। सन् १९१७ में रूस में जो किसान-मजदूर क्राति को सफलता मिली थो उस ने भी इस आग में घी का काम किया। 'मशाल जलती रहे', यह ध्वनि प्रतिध्वनि बन कर मनुष्य के हृदय में गूंजती रही। गांधी जी ने सन् १९३०-३१ में फिर एक बार अग्रेज़ सरकार को चेतावनी दी पर पशुता का कवच पहने गोरो को कुछ परवाह न हुई। अछूतोद्धार, ग्राम-सुधार और खद्दर प्रचार को गांधी जी ने प्रतीक बना-कर देश को सगठित तो कर दिया पर अग्रेज़ों पर उस का अभीप्सित प्रभाव नहीं पड़ा। नतीजा यह हुआ कि फिर पीछे हट जाना पडा। परतु देश में अब दो विचार-धारायें काम करने लगी—एक, जो गाधी जी के सत्य-अहिंसा के पथ पर चलने वालो की प्ररणा-शक्ति थी तो दूसरी, जो हिंसा और आतक में विश्वास रखने वालो की जीवनदात्री थी। यानी कि अहिंसा से ही काम नही चल सकता, इस का भी अब गहरा अनुभव होने लगा था।

प्रेमचन्द ने अपने लेखनकाल मे इन सब राजनैतिक उतार-चढावो को देखा था। साथ ही उन्हो ने जागीरदारो, राजे-महाराजो की चालो को भी देखा था कि कैसे वे एक ओर जनता के खैरख्वाह बने रहते है और दूसरी ओर अपने आका सरकारी अफसरो को खुश रखने के लिये उन की मशीनरी के पुर्जे बने रहते हैं। सरकारी अफसर और

ज़मींदार मानो चक्की के दो पाट थे, जिन के बीच किसान-मज़दूर पिसते जाते थे और मुंह न खोल सकते थे । किसान मज़दूरो की इस बेबसी को भी प्रेमचंद ने देखा था । साथ ही मध्यवर्ग की धार्मिक आडम्बर-प्रियता और रूढ़िवादिता के विषैले परिणाम भी उन की आँखो के सामने थे । पैनी दृष्टि थी ही । प्रेमचंद अपने समय के जीवित इतिहास बन गये । समाज और राजनीति की एक-एक धड़कन का रिकार्ड जैसे उन्हो ने ले लिया हो ।

ऊपर जिन ग्यारह उपन्यासो का उल्लेख हुआ है, उन के अलावा प्रेमचद ने अपनी कहानियों और सम्पादकीय टिप्पणियों, स्फुट निबन्धो में भी समाज और राजनीति की समस्याओ पर विचार किया है । नाटक भी लिखे है, जिन का स्वर सामाजिक समस्याओ की झंकार उत्पन्न करता है । यहाँ हम पहले उनके उपन्यासो पर विचार करेंगे । अन्य रचनाओ पर आगे के पृष्ठो में कुछ लिखा जाएगा ।

जहाँ तक उपन्यासों का संबंध है, हम कह चुके हैं कि उन्हो ने समाज और राजनीति की हर समस्या को लिया है । कुछ मे समाज प्रधान हो गया है तो कुछ में राजनीति । यो राजनीति से समाज और समाज से राजनीति का अन्योन्याश्रित संबंध है । एक के बिना दूसरी की गति नही क्योकि कोई समस्या यदि सामाजिक है तो वह राजनीति पर प्रभाव डालेगी और इस प्रकार उस का राजनैतिक महत्त्व हो उठेगा । वैसे ही राजनैतिक समस्या समाज में क्राति या हलचल मचाने की सामर्थ्य रखने के कारण सामाजिक रूप ले लेगी । वस्तुतः बात यह है कि दोनो का गन्तव्य स्थान एक ही होता है—जनता के अन्धविश्वासो और रूढ़ियों का समूलोच्छेदन कर के उन्हें उन के कर्त्तव्यों और अधिकारो की

ओर से सचेत करना। उदाहरण के लिये गाधी जी की हरिजनोद्धार और हिंदू-मुस्लिम ऐक्य की बात ही लीजिये। इन दोनो का सबध क्रमश सवर्ण-अवर्ण हिंदुओ और हिंदू-मुसलमानो से है। ये शुद्ध रूप मे सामाजिक समस्यायें है पर गाधी जी की राजनीति की ये आधार-शिलायें है क्योकि इन के आधार पर वे जाति-पाति से दूर एक भाई-चारे की सरकार बनाने का सपना देखते है। ये दो बाधाएँ है, जो राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्त्ति में दीवार बन कर खडी है, यह गाधी जी का विचार था इस लिये राजनीति मे आ गई। साराश यह है कि समाज और राजनीति दोनो के बीच, प्रभाव को दृष्टि में रख कर, कोई रेखा नही खीची जा सकती, परतु इतना अवश्य है कि कही सामाजिक समस्या की प्रधानता होती है, तो कही राजनैतिक समस्या की। अतएव हम प्रेमचद के उपन्यासो को दो भागो में बाँट सकते है—१—सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास और २—राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यास। सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यासो में वरदान, प्रतिज्ञा, सेवा-सदन, निर्मला, काया-कल्प और गबन आएँगे और राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यासो में, प्रेमाश्रम, रग-भूमि, कर्मभूमि, गोदान और मगलसूत्र आवेगे। पहले हम प्रेमचद के सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यासो को लेगे और फिर राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यासो को।

सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास

प्रेमचद के सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यासों में मुख्य रूप से वे ही समस्याएँ ली गई है जो आर्यसमाज आन्दोलन का प्रधान अग थी। वे समस्याएँ है—बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह दोहाजू-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, विधवा और वेश्या। यदि एक शब्द मे कहे तो प्रेमचद ने अपने सामाजिक

समस्या प्रधान उपन्यासो में, सामन्ती समाज मे पिसती नारी की दयनीय स्थिति, उस का दबा हुआ असतोष, उस की मुक्ति के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता आदि का ही चित्रण किया है। यह हमारे युग की विशेषता भी है कि हम आज नारी को उस का चिरकाल से खोया हुआ सम्मानपूर्ण पद देना चाहते है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासो में घुमा फिरा कर इन्ही समस्याओं को लिया है और अपने कथा-विधान, वर्णन-कौशल, कल्पना-शक्ति और भाषा-सौष्ठव से हमें विवश कर दिया है कि हम नारी को सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से देखें और उसे नारकीय यत्रणाओ से मुक्ति दें।

उन का सर्वप्रथम सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास 'वरदान' है। 'वरदान' की समस्या प्रेम की समस्या है। इस में तीन परिवारो की कथा है। एक परिवार सुवामा का है, जिस के पति सन्यासी हो गये हैं। और जो अपने पुत्र प्रताप के साथ अपने दिन काटती है। दूसरा परिवार सुवामा के पड़ोसी संजीवनलाल का है, जिन की पत्नी का नाम सुशीला है और जिन की एकमात्र सतान ब्रजरानी (विरजन) नाम की लड़की है। तीसरा परिवार डिप्टी श्यामाचरण का है, जिन की पत्नी प्रेमवती है और जिन के भी एकमात्र संतान कमलाचरण नाम का लडका है। तीनो परिवार मध्यवर्ग के है। इन्हें उच्च मध्यवर्ग मे भी रखा जा सकता है क्योकि सुवामा ने द्रव्याभाव के कारण महाराजिन, कहार और महरी को हटा दिया है, यह हमें उपन्यास के आरम्भ मे ही पता चल जाता है और तीन-तीन नौकर निम्न मध्यवर्ग का व्यक्ति नही रख सकता, यह स्पष्ट है। ये तीनो परिवार प्रेम के त्रिकोण से जुड़े हैं। केन्द्र है ब्रजरानी। ब्रजरानी और प्रताप पड़ोसी होने से बालसुलभ मैत्री के बंधन में बँधे हैं। विधवा सुवामा एक बार बीमारी में, जब कि प्रताप डाक्टर

को बुलाने गया है और व्रजरानी और उसकी माता दोनो सुवामा की सवा-शुश्रूषा कर रही हैं, अभिलाषा करती है कि व्रजरानी मेरे प्रताप की बहू बने। व्रजरानी भी मन मे प्रताप से बधी है और भविष्य के महल उस ने भी बना रखे है पर नियति को यह स्वीकार नही। डिप्टी श्यामाचरण की पत्नी प्रेमवती सुवामा को बीमारी में देखने आती है और व्रजरानी पर मुग्ध हो कर अपने पुत्र कमलाचरण के लिये उसे तय कर लेती है। विधवा तो छाती पर रत्थर रख लेती है पर यौवन की नदी मे ऊभ-चूभ करता महत्वाकाक्षी प्रताप क्या करे। निर्धनता के कारण व्रजरानी उस से छिनती है। उस के मन में प्रतिहिसा जागती है। वह अब व्रजरानी के घर नही जाता। मन लगा कर पढता है। यहाँ तक तो ठीक पर अपनी प्रेमिका और उस की माँ को उन की भूल का प्रायश्चित्त कराने के लिये ही कमलाचरण की, जो उस का सहपाठी है, झूठी-सच्ची बुराई करता है—अकेले मे नही मुँह पर उस से कोमल हृदय सुशीला बेटी के दुर्भाग्य की चिन्ता में क्षय से चल बस्ती है। कमलाचरण को भी धक्का लगता है और वह अपने को सुधारता है। सास की मृत्यु से ही नही, व्रजरानी द्वारा चरखी-पतगो के तोडने से भी। उधर प्रताप प्रयाग मे जाकर खेल में कप्तान बन बैठा है। व्रजरानी और प्रताप में प्रेम अब भी है और बडा तीव्र। इस का पता तब चलता है, जब व्रजरानी की बीमारी का तार पा कर प्रताप आता है और दोनो प्रेमातुर हो कर मिलते है।

व्रजरानी एक ओर कमलाचरण के प्रति कर्तव्य भावना से बधी है तो दूसरी ओर प्रताप को भी नही भुला पाती। कमलाचरण भी अपने को सुधारता है और चित्रकार बन जाता है। यही क्यो वह प्रयाग मे पढने भी जाता है। प्रताप उसे आदर से लेता है पर कमलाचरण पढ़ने से अधिक जीवन के

रस का लोभी है। एक माली की कुँवारी लड़की सरयू से प्रेम कर बैठता है और एक दिन प्रेमालाप करते देख लिये जाने पर भाग खड़ा होता है और ट्राम से गिरते-गिरते बच कर भी अंत में बिना टिकट पकड़े जाने के डर से गाड़ी से कूद कर जान दे देता है। पुत्रशोक में डिप्टी साहब और प्रेमवती भी चल देते हैं। रह जाती है अकेली विरजन। प्रताप की दबी आकांक्षा उसे विरजन की ओर खींचता है। वह चोर की भाँति आता है पर दरारों की छनती रोशनी में से विरजन का तेजपूर्ण वैधव्य देखकर लौट जाता है और देश सेवा का व्रत लेता है। अब वह 'बालाजी स्वामी' है।

जो विरजन 'भारत-महिला' नाम से विख्यात कवयित्री हो गई है, अपनी रचनाओं में अप्रत्यक्ष रूप से प्रताप को ही समर्पित है। उसकी सखा माधवी प्रताप की उससे प्रशंसा सुनकर प्रताप से प्रेम करने लगती है। एक दिन कमला के पत्रों का बंडल खोलने पर 'बालाजी स्वामी' का चित्र निकलता है, जिससे यह भेद खुलता है कि सन्यासी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले केवल प्रताप हैं। प्रताप जब काशी 'बालाजी स्वामी' के रूप में आता है तो सुवामा बारह वर्ष बाद पुत्र को प्राप्त पाकर उसे माधवी से परिणयसूत्र में आबद्ध देखना चाहती है। विरजन भी त्याग का परिचय देती है। माधवी से जब प्रताप मिलता है तो वह उसके प्रेम पर अपने संन्यास को न्योछावर करना चाहता है पर माधवी सांसारिक बंधनों में न बँधकर उनकी अनुगामिनी वैरागिनी बनने का संकल्प करती है। पर उसे यह भी नसीब नहीं होता। प्रताप सदिया में नदी का बाँध टूटने पर सब मोह-ममता छोड़कर चल देता है।

इस प्रकार 'वरदान' की कथा समाप्त होती है और

पाठक अपने को एक करुण स्थिति मे पाता है। प्रेमचद का आदर्शवाद समस्त कथा पर छाया हुआ है। नारी अपने भारतीय आदर्श को नही छोडती, यह विरजन के चरित्र से स्पष्ट है। माधवी भी मानसिक या प्लेटोनिक प्रेम से घिरी है। आरम्भ में नायक मे अनेक दुर्बलताएँ बताई है पर पीछे वह एकदम देवता हो गया है। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने शरच्चद्र के 'देवदास' और प्रेमचद के 'वरदान' की बडी लम्बी तुलना की है और 'वरदान' की कमियो की ओर सकेत करते हुए कहा है—"देवदास तो तब तक जब तक कि प्रेम पर सामाजिक रोक रहेगी एक अमर उपन्यास समझा जायगा। इसके मुकाबले 'वरदान' तो प्रम का एक तरीके से उपहास है।" (कथाकार प्रेमचद पृष्ठ १६८) लेकिन हमारा कहना यह है कि प्रमचन्द की इस प्रथम कृति में कथावस्तु और चरित्र के लाख दोष हो (वे स्वाभाविक भी है) प्रेमचद ने समाज मे स्वच्छन्द प्रेम को उठती हुई प्रवृत्ति का परिचय देने की जो चेष्टा की थी उसमे वे सफल है। वे बताना चाहते है कि अनमेल विवाह का या अनिच्छा पूर्वक लड़की को किसी के गले बाँध देने से क्या भयकर परिणाम होते है। इसमें अनधिकार व्यक्ति तो यह समझता है कि मुझे जो कुछ मिला है वह मेरा अधिकार है और अधिकारी समाज को विडबना का शिकार हो जाता है। प्रमचद तब तक भारतीय नारी के पतिव्रत की परपरागत विचारधारा से बँधे थे अत वे विरजन या माधवी की शादी नही कराते। फिर समाज में ऐसे व्यक्तियो की आवश्यकता भी सदा रहेगी, जो अपने प्रेम को समाज-सेवा या राष्ट्र-सेवा पर बलिदान कर दें क्योकि उन्ही से जन-कल्याण सम्भव है। अतएव प्रताप का सन्यासी होना एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। उगते हुए भारतीय जनान्दोलन की पृष्ठभूमि में ऐसे ही नायको

की आवश्यकता थी । समाज की एक आवश्यक समस्या को, जो आज भी वैसी ही है, उन्होंने अपने ढग से रखा। विद्रोह उस काल मे समय से पहले की चीज़ होती । तभी विरजन दोनों ओर कर्तव्य-पालन मे मर मिटती है । माधवी का मूल्य भी प्रताप की सेवा-भावना की ओर सकेत करने के कारण कम नही है ।

'प्रतिज्ञा' उनका दूसरा सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास का विषय भी प्रेम है । इसके कथानक मे भी प्रेम का एक त्रिकोण है । वह त्रिकोण दो मित्रो को लेकर बनता है । एक मित्र का नाम अमृतराय है, जो वकील है और दूसरे का नाम दाननाथ है जो प्रोफेसर है। अमृतराय विधुर है। त्रिकोण बनाने वाली इन्ही की साली प्रेमा है । उनकी पहली शादी कालिज के दिनो मे हुई थी और एक पुत्र को जन्म देते-देते पुत्र के साथ उनकी पत्नी स्वयं भी चली गई । प्रेमा के पिता बद्रीप्रसाद और माता देवकी है । कमला प्रसाद भाई है और सुमित्रा उसकी भाभी । अमृतराय की शादी प्रेमा मे होने वाली है पर इसी बीच प० अमरनाथ का विधवा-विवाह पर व्याख्यान सुनकर वे विधवाओ के प्रति कर्तव्य पालन का व्रत लेते है । प्रेमा, जो अमृतराय मे प्रेम करती है, चकित होती है । बात यो सध जाती है कि दाननाथ भी प्रेमा को चाहते हैं और अमृतराय के स्थान पर वे प्रेमा को प्राप्त कर लेते है । मन से प्रेमा दाननाथ को स्वीकार नही करती, सामाजिक मर्यादा वश स्वीकार करती है ।

यह सरल त्रिकोण है, जिस से कोई समस्या सामने नहीं आती, कोई आदर्श नही उभरता । प्रेमचन्द को यह स्वीकार नही । वे पूर्णा को लाकर यह कार्य करते है । पूर्णा के

है। जहाँ से पहले संबंध होता है, वहाँ से साफ इंकार हो जाता है। अपने भाई उमानाथ की सहायता से दौड़-धूप के बाद बनारस में गजाधर पाण्डे, जो १५) रु० माहवार के नौकर हैं, सुमन को पतिरूप मे मिलते हैं।

आराम से पली और सुन्दरी सुमन दहेज के अभाव के कारण दोहाजू गजाधर से बंधती है। उसे वस्त्राभूषणो का शौक था, दिखावे का भी पर वहाँ वह असंभव था। नतीजा यह होता है कि गजाधर को वह मन ही मन घृणा करती है, हालांकि वह ग़रीब उसे खुश रखने की बड़ी कोशिश करता है। उस के घर के सामने भोलीबाई वेश्या रहती है। उस से एक दिन मिलने जा बैठती है पर गजाधर की डाँट खाती है। वह देखती है कि भोलीबाई का सारे शहर में आदर है। वह बाग में जाती है तो चौकीदार उसे आदर से बिठाता है। बड़े आदमी चाहे वे सेठ हो या धर्मध्वजी उस के यहाँ ही नही आते, उसे अपने घर पर भी बुलाते है। वहाँ उस की क़द्र नही। एक बार वह बाग की सैर को जाती है, तो चौकीदार उसे बेंच से उठा देता है। यहाँ पद्मसिंह और सुभद्रा से उस का परिचय होता है। जो उसे अपनी फिटन मे बिठा कर ले आते हैं। वे वकील हैं। सुभद्रा का स्नेह मिलता है तो सुमन को अपनी ग़रीबी में भी सुख का अनुभव होता है। एक बार म्युनिस्पलिटी के चुनाव मे विजयी होने पर सिद्धान्तो को ताक में रख कर जब पद्मसिंह भोलीबाई का मुजरा कराते है तो सुमन को उन के घर से लौटने मे देर हो जाती है। गजाधर पहले से ही सशक है। रात के दो बजे दरवाज़ा खटखटाने पर मुश्किल से दरवाज़ा तो खुला पर सदा को बन्द होने के लिये। सुमन को घर छोड़ना पड़ा और सदा को विवाहित जीवन का अन्त करना पड़ा।

पति प० वसतकुमार गगा स्नान का पुण्य लेते हुए डूब जाते है और वह अनाथ विधवा के रूप में प्रेमा के घर आ जाती है। पूर्णा और प्रेमा पहले से ही स्नेह-मैत्री के बधन में बँधी है। बद्रीप्रसाद उसके नाम ४०००) बैंक में भी जमा करना चाहते है पर बेटा कमलाप्रसाद, जो हरजाई किस्म का आदमी है, यह पसद नही करता है। पूर्णा पर उसकी वासनात्मक दृष्टि रहती है। पूर्णा और सुमित्रा में पहले तो बनती नही पर पीछे वे परस्पर सहानुभूतिशील हो जाती है। कमला को यह अच्छा नही लगता। वह पूर्णा को अनेक उपहार लाकर देता है। सुमित्रा के मन में सदेह उत्पन्न होता है लेकिन पूर्णा अन्त में सती तेज के सहारे वासना के जाल से निकल आती है।

इधर अमृतराय ने विधवाश्रम (वनिताश्रम) खोल रखा है। प्रेमा और दाननाथ दाम्पत्य सूत्र मे बँध चुके है पर दाननाथ प्रेमा की ओर से सदेहशील हो उठते है और समझते है कि प्रेमा अब भी अमृतराय को प्रेम करती है। वे इस कलुषित विचार से अमृतराय के विरोध में लेख लिखते है—"सनातनधर्म पर आघात।" एक दिन वे अमृतराय के व्याख्यान में दगा करना चाहते हैं जिसे प्रेमा मच पर पहुँच कर शान्त करती है और इस प्रकार अमृतराय को यह अनुभव कराती है कि उसने उससे विवाह न कर भूल की है।

सुमित्रा, कमला और पूर्णा के भीतर सघर्ष जारी है। पूर्णा और कमलाप्रसाद का पारस्परिक आकर्षण सुमित्रा से छिपा नहीं है। एक रात कमलाप्रसाद सुमित्रा से क्षमा भी माँगता है पर वह ऊपर से दिखावा करता है। इसे सुमित्रा समझ लेती है। घर मे दाल न गलती देख कमलाप्रसाद पूर्णा को यह

झूठा बहाना कर कि उसे प्रेमा ने बुलाया है, एकान्त निर्जन बगीचे मे ले जाता है। उद्देश्य यह है कि उस के वन्दावन जाने की झूठी खबर उड़ा दी जाए और वहाँ उसे रखा जाए। वासना से ज्वलित कमला बलात्कार के लिये बढ़ता है तो पूर्णा एक कुर्सी खीच कर मारती है, जिस से वह बुरी तरह घायल हो कर मूर्छित हो जाता है। पूर्णा एक वृद्ध द्वारा अमृतराय के आश्रम में पहुँचती है।

अपने पाप को छिपाने के लिये कमलाप्रसाद पूर्णा के दुराचरण की बात फैलाता है। दाननाथ साथ देते हे। पर बद्रीप्रसाद (कमला का पिता) सारा भेद खोल देता है। दाननाथ की बदनामी होती है। वे परेशान रहते हे। एक दिन सुमित्रा जब कमला के रास्ते पर आने की सूचना देती है तब उन्हें संतोप होता है। अमृतराय एक लेख लिख कर उन्हें जनता की राय में ऊँचा उठाते हे। दोनों मित्र फिर एक हो जाते हे। दाननाथ अमृतराय का आश्रम देखने जाते हें तो पाते हे कि पूर्णा पीपल के नीचे कृष्णमंदिर बना कर भक्ति में लीन है। नाव में लौटते समय अमृतराय बताते हे कि उन का विवाह हो चुका है वनिताश्रम के साथ। इस प्रकार अमृतराय अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हे।

'वरदान' के बाद 'प्रतिज्ञा' में भी जो समस्या है वह भी प्रेम की है पर यहाँ विधवा-समस्या और साथ जुड़ गई है। पूर्णा की कहानी मानो विधवाओं की असहायावस्था की कहानी है। प्रेमचद ने उसे वनिताश्रम में ले जा कर रखा है, जो समस्या का स्थायी हल तो नही है पर उससे यह स्पष्ट अवश्य हो जाता है कि जब तक समाज में विधवाओ को आर्थिक दृष्टि से निश्चिन्तता नही होती तब तक वे पूर्णा की भाँति कमलाप्रसाद जैसे वासना-लोलुप नारकीय जीवो के

द्वारा सताई जाती रहेगी । संकेत यह है कि विधवाओं की समस्या भयंकर है और इसे सुलझाने के लिए कोई न कोई प्रयत्न होना चाहिए । नायक अमृतराय 'वरदान' के प्रताप का ही परिवर्तित रूप है, जो भावुक आदर्शवादी है । कमला-प्रसाद का चरित्र क्रमश विकसित होता है और पूर्णा का कुर्सी मार कर उस के दाँत तोड देना यथार्थ की दृष्टि से तो प्रेमचद की सब से बडी सफलता है । 'वरदान' में भारतीय नारी जैसे अपनी बेबसी से ऊब कर नरपशु को उस के अत्या-चार और अन्याय का मजा चखाने के लिए कटिबद्ध हो । ो प्रेमचद 'प्रतिमा' और 'वरदान' मे एक कदम आगे ही दिखाई देते है और उन के आदर्शवाद का स्वप्न टूट रहा है । सुमित्रा, पूर्णा और कमलाप्रसाद के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व का सफल और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लाजवाब समावेश किया गया है ।

'सेवासदन' में प्रेमचद नारी समस्या को और भी गहराई से उठाते है । यहाँ केन्द्रीय समस्या वेश्या की है । 'वरदान' के भीतर अनमेल विवाह, 'प्रतिज्ञा' के भीतर विधवा की करुण स्थिति और 'सेवासदन' में वेश्या समस्या जैसे नारी के सामाजिक पतन का क्रमिक रूप यहा है । सेवासदन में दहेज को अनमेल विवाह का मूल कारण माना गया है । इस की कथा इस प्रकार है—दरोगा कृष्णचद्र बड़े ईमानदार हैं । उन की पत्नी गगाजली है । दो लडकियाँ है—सुमन और शान्ता । लाड-प्यार से पली और सुन्दर, जिन में सुमन तो और भी शौकीन है । पिता रिश्वत नही लेते और लड़की बडी हो जाती है । हिम्मत कर एक महन्त को फँसाते है पर रिश्वत लेने का गुरुमत्र न आने से नीचे के आदमियो को खुश नही कर पाते । भण्डाफोड हो जाता है और जेल की हवा खानी पडती है । रिश्वत के रुपये मुकद्दमे में खर्च होते

है। जहाँ से पहले संबंध होता है, वहाँ से साफ इंकार जाता है। अपने भाई उमानाथ की सहायता से दौड़-धू बाद बनारस मे गजाधर पाण्डे, जो १५) रु० माहवा नौकर है, सुमन को पतिरूप में मिलते है।

आराम से पली और सुन्दरी सुमन दहेज के अभा कारण दोहाजू गजाधर से बंधती है। उसे वस्त्राभूषणो शौक था, दिखावे का भी पर वहाँ वह असभव था। नतीज होता है कि गजाधर को वह मन ही मन घृणा करत हालाकि वह गरीब उसे खुश रखने की बड़ी कोशिश करत उस के घर के सामने भोलीबाई वेश्या रहती है। उस से दिन मिलने जा बैठती है पर गजाधर की डाँट खाती वह देखती है कि भोलीबाई का सारे शहर में आदर है। बाग मे जाती है तो चौकीदार उसे आदर से बिठाता बड़े आदमी चाहे वे सेठ हो या धर्मध्वजी उस के यह नही आते, उसे अपने घर पर भी बुलाते हैं। वहाँ उस क़द्र नही। एक बार वह बाग की सैर को जाती है चौकीदार उसे बेंच से उठा देता है। यहाँ पद्मसिह सुभद्रा से उस का परिचय होता है। जो उसे अपनी ि मे बिठा कर ले आते हैं। वे वकील है। सुभद्रा का मिलता है तो सुमन को अपनी ग़रीबी मे भी सुख का भव होता है। एक बार म्युनिस्पलिटी के चुनाव में वि होने पर सिद्धान्तो को ताक में रख कर जब पद भोलीबाई का मुजरा कराते है तो सुमन को उन के घ लौटने में देर हो जाती है। गजाधर पहले से ही सशक रात के दो बजे दरवाज़ा खटखटाने पर मुश्किल से दर तो खुला पर सदा को वन्द होने के लिये। सुमन को छोडना पड़ा और सदा को विवाहित जीवन का करना पड़ा।

घर छोड दिया पर जाए कहाँ ? सुभद्रा के अतिरिक्त और कोई ठिकाना नही था । वही पहुँची । पर चुनाव के दिनो में जो शत्रु हो गये थे उन्हो ने बदनामी की तो पद्मसिंह को उसे घर से हटाना पडा । हार कर सुमन भोलीबाई की शरण मे गई और वेश्यावृत्ति अपना ली । गजाधर ने आत्मग्लानि से सन्यास ले लिया । गजाधर को भडकाने वाले समाज सुधारक विट्ठलदास थे । पद्मसिंह से मिल कर वे सुमन को अब वेश्यालय से निकालने की युक्ति सोचते है पर पद्मसिंह सुमन के वेश्या होने का कारण अपने को समझते हैं अत उसे मुंह नही दिखाना] जाहते, उसे वहाँ से निकालने को उत्सुक अवश्य हैं ।

सुमन वेश्यालय में प्रसिद्धि प्राप्त करती है और पद्मसिंह के भाई मदनसिंह का लडका सदनसिंह गाँव से अपने चाचा के पास आता है । गठे शरीर का सुन्दर जवान है । वेश्यालय की हवा लगती है तो सुमन से उस का परिचय होता है । वह इतना मुग्ध होता है कि अपनी चाची का एक कगन तक चुरा कर उसे दे आता है, साडी तो एक बार दे ही चुका था । बेचारी सुमन उसे रख लेती है और एक दिन पद्मसिंह को पार्क में पा कर लौटा देती है । विट्ठलदास बराबर प्रयत्न में है कि ५०) मासिक का प्रबध हो तो सुमन को बाहर निकालें । पद्मसिंह ही इस में आगे आते हैं । सुमन वेश्यालय छोडती है । उस ने तन नही बेचा था इस लिये वह पवित्र थी ।

सदन सुमन को वेश्यालय में नही पाता तो उदास हो जाता है । इसी बीच अपने चाचा-चाची के साथ वह गाँव जाता है, जहाँ उस की शादी सुमन की बहन शान्ता से पक्की हो जाती है पर दरवाजे पर बारात जब आती है तब पता

चलता है कि यह तो वेश्या की बहन है। बारात लौट आती है। सदन बनारस चला आता है। सुमन विधवाश्रम मे रहने लगी थी पर विट्ठलदास के पीछे सुमन के यौवन के चाहकों ने तूफान मचा दिया था। एक दिन गंगातट पर उसकी भेंट सदन से होती है। वह अब भी उस पर जान देता है। इसी बीच कृष्णचद्र गंगा मे डूब मरते है और शान्ता का पत्र पद्मसिंह को मिलता है कि मेरा विवाह सदन से हुआ है यदि सात दिन में पत्र न आया तो मैं डूब मरूँगी। क्योकि पिता और बहन के पाप की भागिनी मैं नही। विट्ठलदास शान्ता को लिवा लाये पर पद्मसिंह भाई के विरोध के कारण उसे भी घर मे न रख सके और सुमन के पास ही उसे भी रहना पड़ा। स्वामी गजानन्द (गजाधर) सुमन को मिलते है पर वह वीतराग सुमन को नही अपनाते। सदन मे परिवर्तन होता है और मल्लाही से कुछ पूँजी जमाकर अपनी हैसियत बनाता है। इधर विधवाश्रम की चर्चाओ से घबराकर सुमन शाता को लेकर निकल पड़ती है ताकि शांता को घर पहुँचा आये और स्वयं डूब मरे। पर घाट पर मिलता है सदन, जो शाता को अपना लेता है। मदनसिंह और सदनसिंह का भी मनमुटाव दूर हो जाता है। शांता के एक बच्चा भी हो जाता है पर वह सुमन को सह नही पाती। सुमन उसे छोड कर चलती है तो स्वामी गजानन्द से उसकी फिर भेंट होती है, जो सेवाधर्म के लिये प्रेरणा देते है और कहते है कि पद्मसिंह ने जो वेश्याओं की ५० कन्याओ को सभ्रांत महिलाएँ बनाने के लिये अनाथालय खोला है उसकी अध्यक्षा सुमन होगी। अनाथालय का नाम 'सेवासदन' है। जैसे सुमन का प्रायश्चित्त ही यह हो।

सेवासदन उपन्यास प्रेमचद के पहले दो उपन्यासो से भिन्न प्रकार का है। उन दोनो मे प्रेम का जैसा त्रिकोण

था वैसा इसमें नही है। यह जैसे सुमन के ही उत्थान-पतन की कहानी है। यो इसमे भी दो कथायें है—एक सुमन की और दूसरी शान्ता-सदन की। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है—"उपन्यास में सुमन की कहानी, म्यूनिस्पालिटी के कारनामे और शाता का आख्यान बिखरे-बिखरे चलते गए है। जिन तन्तुओ से यह त्रिमुखी कथासूत्र बाँधा गया है, वह बडा हल्का तन्तु है।" (प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन पृष्ठ २६) परन्तु ऐसा नही है। जिस केन्द्रीय समस्या—वेश्या-समस्या-को यहाँ उठाया गया है, उसके लिये ये दोनो ही आवश्यक तत्व है। वेश्याओ की समस्या के लिये म्यूनिस्पलिटी द्वारा प्रस्तुत हल यह है कि—(१) उन्हें नगर से बाहर रखा जाय, (२) उनको मुजरे के लिये न बुलाया जाय। बुलाया जाय तो भारी टैक्स के साथ गुप्त स्थानो पर ही मुजरे हो और (३) उनको सार्वजनिक स्थानो और पार्कों में न जाने दिया जाय। शाता के आख्यान से यह स्पष्ट होता है कि यदि सदन जैसे साहसी युवक वेश्याओ से विवाह करने को उत्सुक हो तो समस्या काफी सुलझ सकती है। प्रेमचन्द का सुझाव यह है कि वेश्याओ की कन्याओ को 'सेवासदनो' में रखकर सभ्रान्त महिला बनाया जाय। ऐसी दशा में कथानक में यह वाजपेयी जी द्वारा निर्दिष्ट दोष दोष न होकर गुण हो जाता है। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने "इस उपन्यास को केन्द्रीय समस्या कुछ और है" कहकर यह निष्कर्ष निकाला है कि ब्रिटिश पुलिस पद्धति की बुराई, जिसके कारण आदमी भला नही रह सकता और महन्त पर चेतू का हमला, जो सामन्तवाद पर ही हमला है तथा पूंजीवाद का प्रभाव, जो रिश्वत के रूप में प्रकट होता है, सेवासदन का आधार है।" (कथाकार प्रेमचन्द पृष्ठ १९६) परतु जैसा कि डाक्टर रामविलास शर्मा ने कहा है

"इस उपन्यास की वास्तविक समस्या यह है—लड़कियों को कुएँ में ढकेलना और फिर सतीत्व के गीत गाना। इस समूचे व्यापार में बेचारी सुमन की इच्छा अनिच्छा का सवाल ही नही उठता। बलि पशु की तरह जिस खूंटे से भी बाँध दी जाय उसे बंधना है।" (प्रेमचंद और उनका युग पृष्ठ २७) वस्तुत प्रेमचंद ने मूलसमस्या तो नारी के अधिकार की ही ली है पर वे उस समस्या को सब ओर से पूरी सामाजिक व्यवस्था के बीच रखकर देखना चाहते हैं। यही कारण है कि नगर और गाँव के जीवन की पूरी झाँकी उन्होने दी है। नगर के शिक्षित वर्ग के प्रतिनिधि पद्मसिंह और सुधारवादी विट्ठलदास से लेकर सेठ चिमन लाल, म्यूनिस्पल कमिश्नर अबुलवफा, दीनानाथ आदि समाज के स्तम्भ बनने वालों की पूरी पोल उन्होने खोली है। उधर गाँव में रूढ़िवादिता और सामन्ती अन्धविश्वासों का पता उमानाथ के गाँवो मे वर ढूंढने पर गाँव वालो के बनाव शृगार में या मदनसिंह के बारात लौटा लाने में लगता है। नारी दोनो ही स्थानो पर पराधीन है। कुछ लोगो को शिकायत है कि आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पहलू से वेश्या समस्या पर विचार नही हुआ। एक तो यह दोनो पहलू बहुत पीछे चलकर साहित्य में ग्रहीत हुए हैं दूसरे प्रेमचंद केवल एक समस्या को लेकर ही चलने वाले न होकर नगर और गाँव को पूरी तरह साथ ले चलने के लिये विकल रहते हैं। इससे एक समस्या में जो गहराई आ सकती है वह विस्तार से सभव नहीं रह जाती। सुमन 'प्रतिज्ञा' की पूर्णा की ही वशज है, पूर्णा ने कमलाप्रसाद के कुर्सी मार कर अपना विद्रोह प्रकट किया था तो सुमन घर छोड़कर ही चल देती है और उसका धर्म कहता है—"क्या तुम्ही मेरे अन्नदाता हो? जहाँ मजदूरी करूंगी,

एक्साइज विभाग के बाबू भालचंद्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन से तय होता है। उदयभानुलाल बडे प्रसन्न हैं क्योंकि दहेज की बात नही है। पर बात भले न हो, भालचंद्र को रुपया मिलने की आशा तो है ही। विवाह की तैयारियाँ होने लगती है। खर्च के मामले पर पति-पत्नी में कहा सुनी होती है और बाबूसाहब बहाने के लिये गगा में डूबने चलते है। सोचते है कि कपडे किनारे पर रख दूंगा तो लोग समझेंगे कि आत्महत्या कर ली। चार-पाँच दिन में मिर्ज़ापुर से लौट आऊँगा। बहाने को सोच कर चले थे पर हो गई सच्ची। घर से निकले और गली में छिपने की कोशिश करने लगे कि चोरो से उन की भेंट हुई। उन में था मतई, जिस को बाबूसाहब ने एक मुकदमे में तीन साल की सज़ा दिलवाई थी। उस ने बदला लेने को मुशी जी पर वार किया और मुंशी जी ढेर हो गये।

कल्याणी विधवा हो गई और भालचंद्र ने रुपया न मिलने की आशा देख कर निर्मला से विवाह करने की मनाई कर दी। हार कर चालीस वर्ष के अधेड वकील तोताराम से निर्मला को बाँधने का निश्चय किया गया। बाबू तोताराम के परिवार मे एक उन की विधवा बहन थी रुक्मिणी, जो घर की मालकिन थी और तीन लडके थे--बडा मंसाराम, मँझला जियाराम और छोटा सियाराम। मंसाराम सुशील, सुन्दर और पढने मे तेज़ था। निर्मला जब ससुराल पहुँची तो सब से अधिक मंसाराम को उस ने अपने निकट पाया क्योंकि उस के बराबर का था और दूसरे वह उस से कुछ पढ भी लेती थी। मुशी तोताराम निर्मला के प्यार के भूखे थे पर लगते थे उस के बाप जैसे। वह प्यार करे तो कैसे। एक दिन कचहरी से लौटे तो निर्मला को शृंगार किये शीशे के सामने खडा पाया। यह तो कोई

वही पेट पाल लूंगी।" यह दर्प स्वयं असख्य कठिनाइयों से पार होने की शक्ति देता है। वह अन्त तक लडती है और स्वय समाज के लिये उपयोगी वनती है। शाता वरदान की 'विरजन' और 'प्रतिज्ञा' की 'प्रेमा' की भारतीयता लिये रहती है। बिना एक ऐसे पात्र के प्रेमचद की सनुष्टि नही होती। मानो वे नारी के विद्रोही रूप के साथ अपने सनातन सतीत्व की ओर से आँख न मूंदने के लिये कह रहे हो। चेनू, जो महन्त का विरोध करता है और बांकेविहारी की सत्ता को चुनौती देता है, आगे आने वाले राजनीतिक विद्रोहो की पूर्व सूचना-सा जान पडता है और बताता है कि समस्त सामन्ती व्यवस्था को बदले बिना निस्तारा नही है। म्यूनिस्पलिटी में वेश्या सबधी प्रस्ताव पास होने पर हिंदू और मुसलमानो की अलग-अलग जो सभाएँ होती है, उनमें साम्प्रदायिकता की ओर भी सकेत हुआ है। इस प्रकार वेश्या समस्या के केन्द्र होने पर भी प्रेमचद नगर और गाँव की मूल समस्याओ की ओर से बेखबर नही है। 'सेवासदन' हिंदी का पहला उपन्यास है, जिसमें यथार्थ को कला की भव्य वेश-भूषा में उपस्थित किया गया है।

'निर्मला' प्रेमचन्द का चौथा सामाजिक उपन्यास है। इसमें भी 'सेवासदन' की भाँति एक ही पात्र के चारो ओर कथा का ताना-बाना बुना जाता है। पर 'सेवासदन' की भाँति इसमें प्रासगिक कथाओ का अभाव होने से इसका कथानक 'सेवासदन' की अपेक्षा अधिक सुगठित है। यो इसमें भी तीन परिवार हैं पर वे एक दूसरे से बडे सूक्ष्म ततुओ से जुडे है। कथा का आरम्भ बाबू उदयभानु लाल के परिवार से होता है। उनके परिवार में पत्नी कल्याणी के साथ दो लडकियाँ निर्मला और कृष्णा है। निर्मला का विवाह

एक्साइज़ विभाग के बाबू भालचंद्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन से तय होता है। उदयभानुलाल बडे प्रसन्न हैं क्योंकि दहेज की बात नहीं है। पर बात भले न हो, भालचंद्र को रुपया मिलने की आशा तो है ही। विवाह की तैयारियाँ होने लगती है। खर्च के मामले पर पति-पत्नी में कहा सुनी होती है और बाबूसाहब बहाने के लिये गगा में डूबने चलते है। सोचते है कि कपडे किनारे पर रख दूंगा तो लोग समझेंगे कि आत्महत्या कर ली। चार-पाँच दिन में मिर्ज़ापुर से लौट आऊँगा। बहाने को सोच कर चले थे पर हो गई सच्ची। घर से निकले और गली में छिपने की कोशिश करने लगे कि चोरो से उन की भेंट हुई। उन मे था मतई, जिस को बाबूसाहब ने एक मुकदमे में तीन साल की सज़ा दिलवाई थी। उस ने बदला लेने को मुशी जी पर वार किया और मुंशी जी ढेर हो गये।

कल्याणी विधवा हो गई और भालचद्र ने रुपया न मिलने की आशा देख कर निर्मला से विवाह करने की मनाई कर दी। हार कर चालीस वर्ष के अधेड वकील तोताराम से निर्मला को बाँधने का निश्चय किया गया। बाबू तोताराम के परिवार में एक उन की विधवा बहन थी रुक्मिणी, जो घर की मालकिन थी और तीन लडके थे—वडा मंसाराम, मँझला जियाराम और छोटा सियाराम। मंसाराम सुशील, सुन्दर और पढने मे तेज़ था। निर्मला जब ससुराल पहुँची तो सब से अधिक मंसाराम को उस ने अपने निकट पाया क्योंकि उस के बराबर का था और दूसरे वह उस से कुछ पढ भी लेती थी। मुशी तोताराम निर्मला के प्यार के भूखे थे पर लगते थे उस के बाप जैसे। वह प्यार करे तो कैसे। एक दिन कचहरी से लौटे तो निर्मला को शृंगार किये शीशे के सामने खड़ा पाया। यह तो कोई

बात न थी पर उसी समय आ गया मसाराम । वकील साहब को सदेह हुआ कि मसाराम के प्रति निर्मला के मन में कुछ कलुषित भाव है । उस दिन से सदेह ने विराट् रूप धारण किया । निर्मला समझ गई । और निर्मला सदेह दूर करने की विधि सोचने लगी और मसाराम दूर रहने लगा । वकील साहब के मन को इस से शान्ति क्या मिलती ? वे उसे स्वय बोर्डिङ्ग हाऊस मे रख आये, जहाँ ५-६ दिन बाद ही मसाराम को बुखार चढ़ा । मुशी जी देखने गये पर सशय के कारण उसे घर न ला कर अस्पताल ले गये, जहाँ उस की मृत्यु हो गई । निर्मला को इस से बडा दु ख होता है। उधर जियाराम निर्मला के गहने चुराता है और पकड़ा जाकर १०००) दे कर छूटता है पर ज़हर खा लेता है। सियाराम साधुओ के साथ भाग जाता है । तग आ कर मुशी तोताराम भी घर से चल देते । निर्मला अपनी छोटी बच्ची आशा को लिये रह जाती है ।

मसाराम की मृत्यु के बाद निर्मला का आना-जाना एक और परिवार में हो गया था । वह परिवार डाक्टर सिन्हा का था, जिन्हो ने मसाराम का इलाज किया था । ये डाक्टर सिन्हा भालचद्र सिन्हा के वही सुपुत्र थे, जिनसे पहले निर्मला की शादी तय हुई थी । सुधा उन की पत्नी है । ये निर्मला की बहन कृष्णा के विवाह में गुमनाम ४००) रु० भी भेजते हे । एक दिन सुधा की अनुपस्थिति में सिन्हा निर्मला से प्रेम प्रदर्शित करते है, जिस को यह स्वीकार नही करती और सुधा से कहती है । सुधा की फटकार से बेचारे आत्महत्या कर लेते हे । अब निर्मला घुट-घुट कर मरती है और जब उस का शव बाहर निकाला जाता है तब मुशी तोताराम ार पर आ खडे होते है ।

'सेवासदन' की भांति निर्मला की मूल समस्या दहेज और दोहाजू अधेड से विवाह की है। लेकिन इसमे नायिका को वेश्या बनते नहीं दिखाया है और न उस का कोई हल ही दिया हैं। इस मे तो यही दिखाया है कि नारी किस प्रकार परिस्थितियो की शिकार हो कर घुट-घुट कर मरती है। पूरे उपन्यास में विधवाओ का जमघट है। कल्याणी विधवा है, रुक्मिणी विधवा है और सुधा भी विधवा है और पति के बाहर चले जाने के कारण निर्मला भी किसी विधवा से कम नही है। लेकिन नारी का विद्रोही रूप यहाँ भी उभर कर आया है। उपन्यास के आरभ में जब उदयभानु और कल्याणी मे कहन-सुनन होती है और उदयभानु कहते है कि "ऐसे मर्द और होगे जो औरतों के इशारे पर नाचते हैं" तो कल्याणी मुह तोड उत्तर देती है कि "ऐसी स्त्रियाँ भी और होगी, जो मर्दों की जूतियाँ सहा करती है।" इसी प्रकार सुधा अपने कामी पति की आत्म-हत्या से दुःखी न हो कर कहती है--"ऐसे सौभाग्य से मै वैधव्य को बुरा नही समझती।" मरते समय स्वय निर्मला भी, जो परिस्थितियो की शिकार है इन शब्दो में समाज की वर्तमान विवाह प्रथा के खोखलेपन की ओर सकेत करती है--"इस का (बेटी का) विवाह सुपात्र के हाथ करना।" भालचद्र सिन्हा जैसे ढोगी और भुवनमोहन जैस अतृप्त पर कायर व्यक्ति जब तक समाज मे रहेगे तब तक निर्मला जैसी नारियाँ समाज की वेदी पर बलि होती रहेगी। मुशी तोताराम जैसे सदेहशील हृदय के व्यक्ति यदि विवाह करेंगे तो उनका घर उजड़ेगा। यह कटु सत्य है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने शुद्ध सामाजिक तत्त्व का समावेश किया है। 'वरदान' की तरह नायक न सन्यासी होता है, न 'प्रतिज्ञा' की तरह वनिताश्रम खोलता है। 'सेवासदन' भी यहाँ नही है। है एक नारी का करुण अन्त। मसाराम की

मृत्यु उपन्यास का चरम विन्दु है और कला की दृष्टि से उपन्यास वहाँ समाप्त हो जाता तो अच्छा रहता पर प्रेमचद को डाक्टर सिन्हा की मनोवृत्ति से भी पाठक को परिचित कराना था और शकाशील पति के परिवार का नाश भी दिखाना था। अतः इस के आगे भी कथा चली है। इस उपन्यास का मूल्य इस लि े अधिक है कि यह पहला यथार्थ-वादी उपन्यास है। डाक्टर रामविलास शर्मा का यह कहना बिल्कुल ठीक है कि 'निर्मला प्रेमचद के कथा साहित्य के विकास में एक मार्ग चिह्न है। यह पहला उपन्याम है, जिस मे उन्हो ने किसी 'सेदासदन' या 'प्रेमाश्रम' का निर्माण कर के पाठक को झूठी सात्वना नही दी। कहानी अपने निर्भय तक सगत परिणाम की तरफ अविराम गति से बढती जाती है। उन्हो ने कहानी लिखने मे यथार्थवाद को पूरी तरह निबाहा है। यह क्रातिकारी यथार्थवाद नही है क्योकि निर्मला और मंसाराम मे काफी निष्क्रियता है फिर भी यथार्थवाद को लाने और पुप्ट करने मे 'निर्मला' का महत्त्वपूर्ण स्थान है।" (प्रेमचद और उन का युग पृष्ठ ६८)

'कायाकल्प' प्रेमचद का पाचवाँ सामाजिक उपन्यास है। कुछ विद्वान् इस की वर्ग सघर्ष के आधार पर व्याख्या करते है और उस के अन्तर्गत लौकिक-अलौकिक घटनाओ और वासनात्मक या शुद्ध प्रेम की कथा को या तो अनावश्यक बत ते है या प्रेमचद की कमज़ोरी बताते है और आश्चर्य करते है कि जब प्रेमचद 'सेवासदन' और 'निर्मला' जैसे उत्कृप्ट कोटि के सामाजिक उपन्यास लिख चुके थे तथा 'प्रेमाश्रम' और 'रगभूमि' जैसे राजनैतिक उपन्यास लिख चुके थे तब उन्हो ने 'काया कल्प' में तिलस्मी और जासूसी उपन्यासो के तत्त्वो का समावेश कर जन्म-जन्मान्तर के प्रेम की बात को ले कर अलौकिक घटनाओ

का समावेश क्यो किया ? विशेष रूप से उनका यह आश्चर्य तब और बढ जाता है जब वे किसान-जमीदार के सघर्ष और हिंदू-मुस्लिम दगो के रूप में राजनैतिक समस्याओं का 'प्रेमाश्रम' जैसा यथार्थ चित्रण देखते हैं। हमारा मत है कि प्रेमचन्द ने समाज और राजनीति को समर्थ कलाकार की तरह एक साथ लेने की चेष्टा की है। 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' मे राजनैतिक आन्दोलन और किसान मजदूरो के उगते विरोध को वे विस्तार से दिखा चुके थे पर अभी प्रेम की समस्या के कितने ही पहलू शेष थे। प्रेमचन्द ने जैसे विराम लेने के लिये उनको इस उपन्यास मे उठाया हो। आइए पहले हम यह देखे कि 'काया कल्प' की कथा क्या है। 'काया कल्प' मे कथा का सूत्र चार परिवारों से जुडा है—१—चक्रधर का परिवार, २—मनोरमा का परिवार, ३—राजा विशालसिंह का परिवार, ४—यशोदा-नदन का परिवार। चक्रधर के परिवार में उनके पिता मुशी वज्रधर है और माता निर्मला। मनोरमा के परिवार में पिता हरिसेवकसिंह और भाई गुरुसेवकसिंह हैं और पिता की रखैल लौंगी। विशालसिंह के परिवार मे उनकी तीन पत्नियाँ हैं—बडी वसुमती, मँझली देवप्रिया की बहन रामप्रिया और छोटी रोहिणी भाई की विधवा देवप्रिया भी है। सतान कोई नही। यशोदानदन के घर मे उनकी पत्नी वागीश्वरी है। और कन्या अहिल्या, जिसे उन्होने प्रयाग मेले में पाया था। अहिल्या की शादी चक्रधर से होने से ये चारों परिवार एक दूसरे से जुडे हैं। ख्वाजा-महमूद और चक्रधर का लड़का शखधर दूसरे प्रमुख पात्रो में हैं। इनको भी अहिल्या ही कथा में उचित स्थान दिलाती है।

चक्रधर और मनोरमा इस पूरे नाटक के सूत्रधार हैं।

चक्रधर एम० ए० है और आरम्भ से ही ग्राम-सुधार का व्रत लिये हुए है। वे ठाकुर हरिसेवकसिंह की पुत्री मनोरमा के ट्यूटर बनते है। उनके चरित्र और आदर्श से प्रभावित होकर मनोरमा उनको प्रेम करने लगती है। हरिसेवकसिंह विशालसिंह के दीवान है। यो चक्रधर अप्रत्यक्ष रूप से उस परिवार से भी सबधित है। इधर मनोरमा का प्रेम बढता जाता है, उधर बीच में आगरे के समाज-सुधारक यशोदानन्दन अपनी पुत्री अहिल्या के लिये वर की खोज मे मुशी ब्रजधर के यहाँ पहुँचते है और चक्रधर लडकी देखने आगरे जाते हैं। अकस्मात आगरे मे हिंदू-मुस्लिम दगा हो जाता है, जिसे चक्रधर जान पर खेल कर शात करते है। उसके बाद अहिल्या के विषय में उन्हें मालूम होता है कि वह यशोदानन्दन की वास्तविक पुत्री न होकर पाली हुई है तो वे समाजसुधार की धुन में उससे शादी करने को तैयार हो जाते है।

इधर राजा विशालसिंह के तिलकोत्सव की तैयारियाँ होती है और चक्रधर को बेगार लेने के विरोध में मजदूरो को सगठित करना पडता है। सघर्ष में वे जेल जाते हैं। जेल में भी कैदियो और अधिकारियो के बीच तनातनी होती है, जिसमें वे चोट खाते है। जेल में ही यशोदानन्दन अहिल्या से उनकी भेंट कराते है, मनोरमा के प्रयत्नो से वह जेल से छूटते है कि आगरे में फिर दगा हो जाता है। जिसमें यशोदानन्दन मारे जाते है और अहिल्या का अपहरण होता है। चक्रधर फिर आगरे जाते है। ख्वाजा महमूद जो उदार दृष्टि के मुसलमान है अहिल्या की खोज में निकलते है और घर लौटते है तो अहिल्या को और उसके द्वारा मरे हुए अपने पुत्र को देखते है, जिसने अहिल्या का अपहरण किया था। वे सती तेज के कारण पुत्रशोक की कुछ चिन्ता

नही करते । अन्त में चक्रधर और अहिल्या परिणय-सूत्र में बँध जाते हैं।

उधर चक्रधर ने पहली बार जब अहिल्या से शादी करने का निश्चय किया था तभी से मनोरमा कुछ निराश-सी हो गई थी, यद्यपि उसने हृदय में चक्रधर की मूर्ति प्रतिष्ठित कर रखी थी । कुछ ही दिनो में राजा विशालसिंह अपनी पत्नियों की कलह से ऊबकर उसकी ओर आकृष्ट होने लगे थे और उससे शादी भी करली थी । रानी देवप्रिया के तीर्थ-यात्रा पर चले जाने से वे ही राज्य के स्वामी भी थे अतः मनोरमा भी रानी बन चुकी थी । विशालसिंह से उसके विवाह करने का एक उद्देश्य यह भी था कि चक्रधर को रुपये से सहायता देकर वह समाजसेवा के लिये प्रोत्साहित कर सकेगी। ऐश्वर्य से प्रभावित तो हो चुकी थी, यह तो स्पष्ट है ही। चक्रधर को जेल से छुड़ाने में उसने अपने सौंदर्य और प्रतिभा का अच्छा उपयोग किया था।

चक्रधर कुछ दिन आकर जगदीशपुर में रहते हैं पर उनका सेवाभावी हृदय उन्हें पत्नी अहिल्या के साथ प्रयाग ले जाता है, जहाँ वे लेख लिखकर जीविकोपार्जन करते हैं। अहिल्या भी उनकी सहायता करती है । मनोरमा चक्रधर के जाने के बाद ऐसी बीमार पड़ती है कि मरणासन्न हो जाती है । वह चक्रधर को तार देती है और चक्रधर अहिल्या तथा नवजात शिशु शखधर को लेकर आते हैं। मनोरमा पुनर्जीवित-सी हो उठती है। इसी समय भेद खुलता है कि अहिल्या राजा विशालसिंह की कन्या सुखदा है, जिसे उन्होंने प्रयाग मेले मे खो दिया था। इस भेद के खुलते ही चक्रधर की स्थिति बदल जाती है और शखधर राज्य का उत्तराधिकारी बन जाता है। यही सारे पात्रों का कायाकल्प हो जाता है।

लेकिन चक्रधर को इससे सन्तोष नही। जनसेवी जो ठहरे। एक दिन अहिल्या और शखधर को छोड़ कर चल देते है। पुत्र शखधर बड़ा होकर पिता के संस्कारो के वशीभूत होता है और तेरहवें वर्ष में घर छोड कर पाँच वर्ष तक लगातार पिता की खोज करता रहता है। अन्त में साई गज के मन्दिर में साधु भगवानदास के रूप में उन्हें खोज लेता है। अपना पूरा परिचय देता है पर चक्रधर रहस्य को छिपाये रहते है। शखधर पिता से घर लौटने के लिये नही कह पाता और अहिल्या की बीमारी का तार पाकर चला आता है।

जगदीशपुर में हरिसेवक और रोहिणी थे। अहिल्या पहले मुशी वज्रधर और फिर अपनी माता वागीश्वरी के पास चली गई थी। राजा विशालसिह निराश होकर प्रजा पर अत्याचार करने लगे थे। मनोरमा की दशा दयनीय थी।

देवप्रिया की विलास-कथा भी साथ चल रही है। 'सुधाविदु' पीकर वह नवयौवना बनने का यत्न करती रहती है और राजकुमारो को फँसाती रहती है। पहले हर्षपुर का राजकुमार उसको मिलता है, जो महेन्द्रसिह का ही अवतार है। मृत्योपरान्त अपने जन्म की कथा सुनाते हुए हर्षपुर का राजकुमार यानी कि महेन्द्रसिह बताता है कि वह वैज्ञानिक प्रयोगो में सफलता प्राप्त कर तिब्बती भिक्षु के आदेश से एक ऐसे महात्मा (वे डार्विन ही थे) से मिलता है जो आधुनिक विज्ञान और योग का सबध जोडते हैं और राजकुमार को उसके पूर्व-जन्म की कथा बताते है, जिससे वह जगदीशपुर मे आकर देवप्रिया से मिलता है। वह देवप्रिया को भी विज्ञान की सहायता से युवती बनाता है पर जैसे ही सात वर्ष के श्रम से निर्मित वायुयान में उडता हुआ उसे

आलिंगन करना चाहता है, मृत्यु का शिकार हो जाता है। देवप्रिया उस की मृत्यु के बाद हर्षपुर में ही 'कमला' के रूप में पुनर्मिलन की आकांक्षा से तपस्या करती है। उस की तपस्या सफल होती है और उस के पति चक्रधर के पुत्र शंख-धर के रूप में अवतार लेते हैं। आगरा जाते हुए शंखधर हर्षपुर स्टेशन पर जैसे ही पहुँचता है कि उस की पूर्व स्मृतियाँ जाग्रत हो कर उसे देवप्रिया (कमला) के पास ले जाती हैं। वह पहले उसे विज्ञान के प्रयोगो से युवती बनाता है और फिर जगदीशपुर लाता है। वहाँ भी वह जब प्रथम बार उससे मिलता है कि उस की जीवनलीला समाप्त हो जाती है। मरते समय वह कहता है—"प्रिये! फिर मिलेंगे। यह लीला उस दिन समाप्त होगी, जब प्रेम मे वासना न रहगी।" यह दृश्य विशालसिंह की मृत्यु का भी कारण होता है। देवप्रिया रह जाती है किसी दूसरे रूप मे अपने पति से मिलने के लिए तपस्या करती हुई। अन्त में चक्रधर आते है। उनके आते ही अहिल्या मर जाती है, मानो उन की राह ही देख रही हो। कुछ दिन बाद वज्रधर और निर्मला भी चल बसते हैं। चक्रधर और मनोरमा अन्त तक दूर ही रहते है—वह बाहर चला जाता है और वह महलो में रोने को रह जाती है। यो उपन्यास का करुण अन्त होता है।

अब इस कथा का विश्लेषण करे तो लगता है जैसे प्रेमचद के मन में अनेक प्रश्न हैं, जो प्रेम और विवाह से सबंधित है। पहली बात तो यह है कि इसमे प्रेम की समस्या उच्चवर्ग से सबधित है। राजा विशालसिंह और देवप्रिया के रूप मे प्रेमचन्द ने उच्चवर्ग के स्त्री-पुरुषो की विलासिनी मनोवृत्ति का ही चित्र खीचा है। विशालसिंह तीन-तीन स्त्रियों से भी संतुष्ट नही होते और मनोरमा से शादी करते है और अन्त में पाँचवी बार शादी करने को भी तैयार हो

जाते है और देवप्रिया भी 'सुधाविन्दु' से नवयौवना बनी रह कर जन्मजन्मान्तर तक विलास मे डूबी रहना चाहती है। कायाकल्प का सब से बड़ा उद्देश्य उच्चवर्ग के इसी घृणित जीवन का दिग्दर्शन कराना है। कथानक का अलौकिक अश प्रतीकात्मक है, जो इस मनोवृत्ति के उद्‌घाटन के लिये नितान्त आवश्यक है। हमारी समझ में नही आता कि एक स्वर से हर व्यक्ति ने इस अलौकिक अश की बुराई क्यो की है। यह ठीक है कि इस का कथानक प्रेमचन्द के सब उपन्यासो से जटिल है और इससे कथा पर रहस्य का पर्दा पड जाता है पर प्रेमचन्द ने समाज के एक शक्तिशाली वर्ग की प्रेम-सबधी भावना का खोखलापन दिखाया है, जहाँ एक नही कई जन्म तक वासना से मनुष्य का उद्धार नही होता। ऐसे वासना के रोगियो की मुक्ति वासना-रहि‌त प्रेम से होगी, यही शखधर के मृत्यु के समय कहे शब्दो स ध्वनित होता है। सयोगो और अद्‌भुत तत्त्वो के समावेश से यह उपन्यास प्रेमचन्द की उस यथार्थवादी परपरा से दू जा पडता है, जिस का विकास वे अब तक कर चुके थे प यह लेखक के साथ अन्याय है कि केवल कथा-सगठन व आधार पर उसे निकृष्ट करार दे दिया जाए।

फिर चक्रधर और मनोरमा की कहानी मे सामाजिक यथार्थ भी पूरा-पूरा है। मनोरमा चक्रधर की प्रेरणा-शक्ति है। चक्रधर किसान-मजदूरो के सगठन से लेकर दगो तक में ज अपूर्व वीरता दिखाता है वह उसी के बल पर। वह अपने शरीर को बेचने को प्रस्तुत होती है तो इसी लिये कि रुपय के अभाव में चक्रधर की सेवा-भावना कुठित न हो। वह स्वय कुछ नहीं पाती। न उसे चक्रधर मिलता है और न शंखधर ही। उस का जीवन भीतर-ही-भीतर खोखला हो जाता है।

चक्रधर और अहिल्या की कहानी का महत्त्व दो प्रकार से है । एक तो प्रेमचद यह दिखाना चाहते है कि खोई हुई लड़कियो की भी समस्या है, जिस का हल यह है कि चक्रधर जैसे शिक्षित और उदार विचार के युवक उन्हें अपने माँ-बाप के विरोध की चिन्ता न करते हुए अपनाएं। हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य पर जो प्रकाश पड़ता है वह उस की दूसरी विशेषता है । यशोदानन्दन का बलिदान, अपने पुत्र की हत्या पर भी ख्वाजा महमूद का सतुलन बनाये रखना, साम्प्रदायिकता के विष से छूटने की जैसे यही एक मात्र अमृतमयी औषधि हो । अहिल्या से चक्रधर सिद्धान्तवाद के कारण बँधा है, वैसे वह भी मनोरमा के लिये जीवन भर व्यथा छिपाये रहा, भले ही प्रकट वह न हुई हो ।

हरिसेवक और लौंगी की कथा, जिस ने रखैल होते हुए भी अपन जीवन को उत्सर्ग कर दिया, यह बताती है कि प्रेमचद प्रम के लिये केवल अग्नि के सामने मन्त्रोच्चार को ही महत्ता नही देते । इस पात्र की तेजस्विता-पर बड़े-बड़े यथार्थवादी पानी भर जाएँगे। यहाँ उन्हो ने स्पष्टत. इस वात का समर्थन किया है कि विवाह तन का नही मन का है ।

इस के अतिरिक्त तिलकोत्सव पर किसान-मजदूरों का विरोध होता है । जेल में कैदी और दरोगा के बीच संघर्ष होता है । चक्रधर की मोटर के साँड़ द्वारा चूर-चूर होने पर वे जेल के साथी धन्नासिह के भाई मन्नासिह को ठोकर से इतना मारते है कि उस की मृत्यु ही हो जाती है । ये सब राजनैतिक क्राति और जन-जागरण के सकेत है, जिन को 'कायाकल्प' जैसे उपन्यास में भी प्रेमचंद ने रखा है, तो इसी लिए कि लोग समझें कि उन्होने पथ बदला नही है। इस से वे चित्र के रंगो को पूर्णता ही देते है ।

वैसे, जैसा कि हमने इस उपन्यास को लेते समय आरभ में ही कहा है, इसकी मुख्य समस्या दूसरी ही है। श्री रामरतन भटनागर के शब्दो में 'सारे उपन्यास मे अनेक रसो और भावों का ऐसा अजस्र प्रवाह वह रहा है कि पाठक पल-पल में उस में डूबता-उतराता रहता है। वह कथा की बात भूल जाता है, चरित्र-चित्रण की बात भूल जाता है और उपन्यास के प्रवाह में डूब जाता है। भाषा की सारी शक्ति, मनोविज्ञान और कल्पना की सारी सूक्ष्मता, सारी सूझ, मारी उपज रसपूर्ण प्रसगो को जीवन देने मे लग जाती है। इसी से यह उपन्यास प्रेममूलक महाकाव्यो की श्रेणी में उठ गया है।" (प्रेमचद पृष्ठ १३४)

'गबन' प्रेमचन्द जी का छठा और अन्तिम सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास मे प्रेमचन्द ने एक और सामाजिक बुराई को ले कर समाज की जर्जर अवस्था की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। वह बुराई है आभूषण-प्रियता की। कहानी यो है कि रमानाथ और जालपा की शादी होती है। सब गहने चढते है पर चन्द्रहार नही और बचपन से जिस चन्द्रहार के लिए जालपा जान देती है वही न मिले तो वह प्रसन्न कैसे रहे? रमानाथ शेखीखोर है। चुगी उघाने में ३०) मासिक की नौकरी करता है और गहने खरीदने मे सर से पैर तक कर्ज़ मे दब जाता है। जालपा की एक सखी है रतन, जो कंगन बनवाने के लिए रुपये देती है। उन रुपयो को सुनार उधार में काट लेता है। रतन के तकाजे पर वह चुगी के रुपयो मे से गबन करता है। और कही से रुपयो का प्रबन्ध न हो सकने पर कलकत्ता भागता है—वह भी बिना टिकट। पर रास्ते म देवीदीन खटीक मिलता है, जो टिकट के पैसे दे देता है और उसे अपने यहाँ ले जाता है। पहले तो गुप्त रूप से

रहता है पर फिर वह चाय की दूकान कर लेता है और कुछ पैसे इकट्ठे कर लेता है । एक दिन राधेश्याम का नाटक देखने जाता है तो ऐसा विचित्र वेश बनाकर कि सब उसे कौतूहल से देखते हैं । परिणाम यह कि पुलिस सदेह में गिरफ़्तार कर लेती है । पुलिस को वह नाम पता गलत बताता है । देवीदीन को जब पता चलता है तो रमानाथ को छुडाने की चेष्टा करता है । रमानाथ को भय है कि उसका वारट होगा पर वह मिथ्या है क्योकि जालपा उसके जाने के बाद ही सब गहने बेच कर चुगी का रुपया भर देती है ।

रमानाथ का उपयोग एक राजनैतिक मुकदमे में किया जाता है । यह आतंकवादियो का मुकदमा है, जिसके लिये कोई गवाह नही मिलता। रमानाथ मुखबिर बन जाता है । यहाँ उसकी प्रसन्नता के लिये पुलिस जोहरा वेश्या को उससे मिलाती है। जालपा अपने पति की खोज में कलकत्ते पहुँचती है और यह जानकर कि उसका पति आतंकवादियों के खिलाफ झूँठी गवाही दे चुका है, उसका तिरस्कार करती है। रमानाथ आत्मग्लानि का अनुभव कर अपना बयान बदल देता है। जज उस पर विश्वास कर निरीह व्यक्तियो को छोड देता है ।

तीन वर्ष बाद देवीदीन कुछ जमीन लेकर बाग लगाता है, गाय-भैंस खरीदता और आदर्श ग्राम-जीवन विताता है । जालपा, रमा, रतन और जोहरा भी साथ रहते हैं । रतन अपने पति की मृत्यु और भतीजे द्वारा सम्पत्ति के हडप लिये जाने पर निराश्रित हो गई थी इसलिये सखी के साथ ही चली आई। जोहरा का हृदय परिवर्तन हो गया था। रमानाथ के बाद दयानाथ भी नौकरी से बर्खास्त होकर

वैसे, जैसा कि हमने इस उपन्यास को लेते समय आरभ में ही कहा है, इसकी मुख्य समस्या दूसरी ही है। श्री रामरतन भटनागर के शब्दो में 'सारे उपन्यास में अनेक रसो और भावों का ऐसा अजस्र प्रवाह वह रहा है कि पाठक पल-पल में उस में डूबता-उतराता रहता है। वह कथा की बात भूल जाता है, चरित्र-चित्रण की बात भूल जाता है और उपन्यास के प्रवाह में डूब जाता है। भाषा की सारी शक्ति, मनोविज्ञान और कल्पना की सारी सूक्ष्मता, सारी सूझ, मारी उपज रसपूर्ण प्रसगो को जीवन देने में लग जाती है। इसी से यह उपन्यास प्रेममूलक महाकाव्यो की श्रेणी में उठ गया है।" (प्रेमचद पृष्ठ १३४)

'गबन' प्रेमचन्द जी का छठा और अन्तिम सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने एक ओर सामाजिक बुराई को ले कर समाज की जर्जर अवस्था की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। वह बुराई है आभूषण-प्रियता की। कहानी यो है कि रमानाथ और जालपा की शादी होती है। सब गहने चढते हैं पर चन्द्रहार नही और बचपन से जिस चन्द्रहार के लिए जालपा जान देती है वही न मिले तो वह प्रसन्न कैसे रहे? रमानाथ शेखीखोर हैं। चुगी उघाने में ३०) मासिक की नौकरी करता है और गहने खरीदने में सर से पैर तक कर्ज़ में दब जाता है। जालपा की एक सखी है रतन, जो कगन बनवाने के लिए रुपये देती है। उन रुपयो को सुनार उधार में काट लेता है। रतन के तकाजे पर वह चुगी के रुपयो मे से गबन करता है। और कही से रुपयो का प्रबन्ध न हो सकने पर कलकत्ता भागता है—वह भी बिना टिकट। पर रास्ते में देवीदीन खटीक मिलता है, जो टिकट के पैसे दे देता है और उसे अपने यहाँ ले जाता है। पहले तो गुप्त रूप से

रहता है पर फिर वह चाय की दूकान कर लेता है और कुछ पैसे इकट्ठे कर लेता है । एक दिन राधेश्याम का नाटक देखने जाता है तो ऐसा विचित्र वेश बनाकर कि सब उसे कौतूहल से देखते हैं । परिणाम यह कि पुलिस सदेह में गिरफ्तार कर लेती है । पुलिस को वह नाम पता गलत बताता है । देवीदीन को जब पता चलता है तो रमानाथ को छुडाने की चेष्टा करता है । रमानाथ को भय है कि उसका वारंट होगा पर वह मिथ्या है क्योंकि जालपा उसके जाने के बाद ही सब गहने बेच कर चुंगी का रुपया भर देती है ।

रमानाथ का उपयोग एक राजनैतिक मुकदमे में किया जाता है । यह आतंकवादियों का मुकदमा है, जिसके लिये कोई गवाह नही मिलता । रमानाथ मुखबिर बन जाता है । यहाँ उसकी प्रसन्नता के लिये पुलिस जोहरा वेश्या को उससे मिलाती है । जालपा अपने पति की खोज मे कलकत्ते पहुँचती है और यह जानकर कि उसका पति आतंकवादियो के खिलाफ झूँठी गवाही दे चुका है, उसका तिरस्कार करती है । रमानाथ आत्मग्लानि का अनुभव कर अपना बयान बदल देता है । जज उस पर विश्वास कर निरीह व्यक्तियो को छोड देता है ।

तीन वर्ष बाद देवीदीन कुछ ज़मीन लेकर बाग लगाता है, गाय-भैंस खरीदता और आदर्श ग्राम-जीवन बिताता है । जालपा, रमा, रतन और जोहरा भी साथ रहते हैं । रतन अपने पति की मृत्यु और भतीजे द्वारा सम्पत्ति के हडप लिये जाने पर निराश्रित हो गई थी इसलिये सखी के साथ ही चली आई । जोहरा का हृदय परिवर्तन हो गया था । रमानाथ के बाद दयानाथ भी नौकरी से बर्खास्त होकर

यही आ गये थे। सब गाँव वालो की सेवा करते है। कुछ दिनो में रतन की मृत्यु हो जाती है। एक दिन जोहरा भी गगा में एक नाव के उलटने पर एक व्यक्ति को बचाने के प्रयत्न में डूब जाती है। जालपा और रमानाथ दोनो निराश और दुखी गगा तट से लौट आते है।

इस कथा मे प्रेमचन्द ने मुख्य दो बातो की ओर सकेत किया है—एक तो यह कि मध्यवर्ग अपनी झूठी शान के कारण आपत्तियो का शिकार होता है। रमा की शादी कर्ज से हुई। गहनो से कर्ज चुकाया गया। फिर कर्ज लेकर गहने बने। गबन हुआ। और अन्त में मुखबिर बन कर झूठी गवाही देने को उद्यत होना पड़ा। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उसका चरित्र यथार्थ के वहुत निकट है। मनोवैज्ञानिकता तो समें प्रेमचन्द के सब उपन्यासो से अधिक है। दूसरी बात यह है कि सम्मिलित परिवार प्रथा म नारी को कोई स्थिति नही है क्योकि रतन अन्त में सब ओर से निराश होकर मृत्यु की गोद मे सो जाती है। अपने भतीजे क द्वारा अपदस्थ होने पर वह कहती है—"किसी सम्मिलित परिवार में विवाह न करना और अगर करना तो जब तक अपना घर अलग न बना लो चन की नीद मत सोना।" जालपा के चरित्र में आरम्भ में मध्यवर्गीय वातावरण मे पली नारी की दुर्बलताएँ है पर पति क गबन कर के भागने के बाद वह किस प्रकार वीरता, धैर्य और सूझ-बूझ से काम लेती है, यह देखते ही बनता है। वह पति की रक्षा ही नही करती उसे देशसेवा के साथ स्वावलबी जीवन विताने की भी प्रेरणा देती है। वेश्या जोहरा का हृदय-परिवर्तन भी दर्शनीय है। जहाँ कही प्रेमचन्द वेश्या का चित्रण करते है, उसे ऊचा अवश्य उठाते है। देवीदीन खटीक इस उपन्यास का वड़ा सजीव

पात्र है। उसके दो लडके शहीद हो जाते हैं—देश की वेदी पर और पति-पत्नी श्रम से अपनी गुज़र करते हैं। देवीदीन के द्वारा इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने राजनैतिक समस्या को समाज की समस्या का अभिन्न अग बना दिया है। जालपा सकट में भी राजनैतिक चेतना लिये जागरूक रहती है, यह इस बात का प्रमाण है कि प्रेमचन्द नारी को 'मृदूनि कुसुमादपि' के साथ 'वज्रादपि कठोराणि' भी बनाना चाहते हैं, जो युग के अनुकूल बात है। देवीदीन की यह भविष्यवाणी स्वराज्य-भोक्ताओ के लिये कैसी खरी उतरती है—"अभी तुम्हारा राज नहीं है तब तो तुम भोगविलास पर इतना मरते हो जब तुम्हारा राज्य हो जायगा तो गरीबो को पीस कर पी जाओगे।" यह १९३० के उपन्यास का एक पात्र है। आश्रम को व्यवस्था प्रेमचन्द ने यहाँ भी की पर निराश्रितो में न जोहरा और न रतन, कोई उसका सुख नही भोग पाती मानो यह आश्रम-व्यवस्था समस्या का कोई हल न हो। 'निर्मला' और ग़बन' प्रेमचन्द के श्रेष्ठ यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास है। अन्तर यह है कि निर्मला वस्तु-सगठन की दृष्टि से श्रेष्ठ है तो 'गबन' में विषय-विस्तार का आकर्षण है। मिल मालिको की मनोवृत्ति का खोखलापन देवीदीन द्वारा प्रकट कराया गया है और पुलिस और न्यायव्यवस्था एक पाखण्ड है, यह रमानाथ की मुखबरी वाले मुकदमे से स्पष्ट किया गया है। समाज, राजनीति, धर्म और विदेशी शासन की बुराइयों का यथार्थवादी चित्रण गबन की बड़ी भारी विशेषता है।

यदि प्रेमचन्द के इन सब सामाजिक उपन्यासों को एक दृष्टि में देखें तो कई बातें सामने आती हैं। पहली बात तो यह है कि प्रेमचन्द ने समाज की कोई समस्या

ऐसी नही जिस पर न लिखा हो और लिखा भी है तो ऐसा कि उस पर सब दृष्टियो से विचार किया है। विधवा-समस्या, अनमेल विवाह, दहेज, वेश्या वृत्ति, स्वच्छद प्रेम. अशरीरी प्रेम, आदि पर उन्होने खूब गहराई से विचार किया है। वरदान की विरजन, प्रतिज्ञा की प्रेमा, सेवासदन की सुमन, निर्मला की निर्मला, कायाकल्प की मनोरमा और गबन की जालपा क्रमश भारतीय नारीत्व की गरिमा का शखनाद करने वाली नायिकाएँ है । ये उपन्यास के पुरुष पात्रो से अधिक सशक्त है। जैसे प्रेमचन्द ने भी प्रसाद की भाँति नारी को पुरुष पर महत्व देना चाहा हो। इनमें से हर एक में कर्तव्य और प्रेम का द्वद्व है पर वे प्रेम को कर्तव्य की वेदी पर बलिदान करती है। भारतीय नारी का परपरागत रूप प्रेमचन्द ने विकृत नही होने दिया।

दूसरी बात आदर्श की है। प्रेमचन्द आदर्शवाद का पल्ला नही छोडते। यो 'निर्मला' और 'गबन' में यथार्थवाद का बडा ही सुन्दर रूप है पर 'गबन' तक में प्रेमचन्द आदर्शवादी हल देकर यह घोषित करते से जान पडते है कि मेरे पास समस्याओ का इसके अतिरिक्त कोई हल नहीं है। यो 'प्रतिज्ञा' का कमलाप्रसाद और 'गबन' का रमानाथ यथार्थवादी चरित्रो के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। निर्मला का तो सारा वातावरण ही यथार्थ है। हाँ, यह अवश्य है कि आदर्शवाद को छोडना न चाहते हुए भी एक विकासशील कलाकार की भान्ति यथार्थ उन्हें अपनी ओर खींचता-सा जान पडता है।

तीसरी बात यह है कि प्रेमचन्द के ध्यान में समाज-सेवा और राष्ट्रसेवा बडे महत्व की चीज़ रही है। अत आरम्भ से ही या तो उनके नायक ही इस पुण्य कार्य में

जुटे मिलते है या वे कोई दूसरा पात्र इस कार्य के लिए ले आते है । "'वरदान' का प्रताप, 'प्रतिज्ञा' का अमृतराय, 'सेवासदन' का विट्ठलदास, 'कायाकल्प' का यशोदानन्दन और चक्रधर और 'गवन' का देवीदीन ऐसे ही महान् विचारों को ले कर चलने वाले पात्र है । कुछ सामान्य पात्र भी है, जो सामन्तवादी और साम्राज्यवादी परम्पराओं के विरोध में जान तक दे देते है । 'सेवासदन' का 'चेतू' ऐसा ही वीर है, जो धार्मिक पाखण्ड के विरोध का झण्डा ऊँचा रखता है । साप्रदायिक समस्याएँ और उन का उदार दृष्टि से हल भी इन उपन्यासों का ध्येय है । भले ही वे 'सेवासदन' मे म्यूनिस्पलिटी के सिलसिले मे आएँ या 'कायाकल्प' में हिंदू-मुस्लिम दगों के रूप में । यों प्रेमचन्द जी की दृष्टि सामाजिक उपन्यासों मे राजनीति को बराबर पकड़े रहती है ।

चौथी बात यह है कि प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासो मे भी नगर और गाँव साथ-साथ है—विशेषकर बड़े उपन्यासों में । 'सेवासदन' और 'कायाकल्प' मे गाँवो मे जीवन और वहाँ की जनता का चित्रण प्रेमचन्द ने बहुत ही अच्छा किया है । 'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला' और 'गवन' में नागरिक जीवन विशेष उभरा है । एक बात और । 'कायाकल्प' को छोड कर उन्हो ने मध्यवर्ग के ही एक अश को सामाजिक उपन्यासों का विषय बनाया है ।

साराश यह कि उन के सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यासो में समाज की दिन-दिन उठती समस्याओ का वस्तुनिष्ठ और जनहितकारी चित्रण किया गया है । जो कोरे रोमांटिक और तिलस्मी उपन्यासो की धारा को वास्तविकता की ओर मोडने मे समर्थ हुआ है ।

राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यास

सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यासो के ऊपर विचा करते हुए हम यह कह सकते है कि प्रेमचन्द ने अपने उ उपन्यासो में मध्यवर्ग की समस्याओ को लिया है । मध्यव का क्षेत्र नगर है इस लिए उनके अधिकाश पात्र नागरि है । 'कायाकल्प' जैसे कुछ उपन्यासो मे उच्च मध्यव की सामाजिक स्थिति पर भी उन्हो ने अच्छा प्रकाश डाल है । पर सहानुभूति उनकी निम्न मध्यवर्ग की ओर ही है कदाचित इस लिये कि वे स्वय भी उसी वर्ग के थे । हम उन उपन्यासो के विवेचन में यह भी कहा है कि कही-कह गॉव भी झलके है और उन में निम्नवर्ग के पात्रो की करुण स्थिति और उन का विद्रोह भी उभरा है पर वह मध्यवर्गीय समाज की सामन्तकालीन विडम्बनाओ की पृष्ठभूमि व ही अनुकूल उभरा है । प्रमुखता उस को नही दी है । गांवं और उनकी समस्याओ को उन्हो ने प्रमुखता अपने राजनैतिव समस्या प्रधान उपन्यासो मे दी है । उन के राजनैतिव समस्या प्रधान उपन्यास 'प्रेमाश्रम', 'रगभूमि', 'कर्मभूमि' 'गोदान' और 'मगल-सूत्र' है । इन में प्राधान्य गाँव का है—कम से कम पहले चारो उपन्यासो में । 'मगल-सूत्र' अधूरा है अत उस में गॉवो का क्या रूप होता, यह कहा नही जा सकत पर जो प्रेमचन्द मरने से दो-तीन महीने पहले यह कहते थे कि "भाई, मनुष्य का वस हो तो कही देहात में जा बसे दो-चार जानवर पाल ले और जीवन को देहातियो की सवा में व्यतीत कर दे" (९ जुलाई १९३६ को श्री उपेन्द्रनाथ अश्क को लिखे पत्र से) वह 'मगल-सूत्र' में गाँव को प्रधानता

अवश्य देते, यह विश्वास करना अनुचित नही है। साराश यह है कि उन के राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यासो में गाँवो को ही महत्त्व दिया है। नगर है तो इस लिए कि उन के द्वारा गाँवो का शोषण, उन को गरीवी और भुखमरी, उन की जड़ता और बेवसी का सजीव चित्र अकित किया जा सके। अपने इन उपन्यासो में प्रेमचन्द ने गाँव की जो नगी तस्वीर खीची है, वह अपने आप मे कला की उत्कृष्टतम वस्तु है।

'प्रेमाश्रम' उनका सब से पहला राजनैकि समस्या प्रधान उपन्यास है। यह सन् १९२२ का लिखा हुआ है। इस समय देश में गाधी जी का २०-२१ का आन्दोलन स्थगित हो चुका था और देश को गाँवो की ओर जाने का और उन को स्वतत्रता-आन्दोलन की आधारशिला मानने का नारा गाधी जी ने दिया था। गाँव के लोगो में भी एक चेतना छाई थी और सव मिल कर ज़मीदारो और जागीरदारो के खिलाफ खड़े होने की सोचने लगे थे। अंग्रेज़ सरकार के ये दलाल थे, इन्ही के द्वारा गाँव के गरीव और निर्धन मजदूर किसान पीसे जाते थे। 'प्रेमाश्रम' में यही किसान ज़मीदार सघर्ष दिखाया गया है। इस की कथा यह है कि लखनपुर गाँव के ज़मीदार ज्ञानशकर है। उन के भाई प्रेमशकर लापता है। पिता की मृत्यु हो चुकी है अतः चाचा प्रभाशंकर ज़मीदारी की देखभाल करते है। ज्ञानशकर की पत्नी है विद्या, जो सती-साध्वी नारी है। भाभी का नाम श्रद्धा है, जो पति-वियोग से दुखी है। चाचा प्रभाशकर के तीन लडके है—वडे लडके का नाम दयाशकर है, जो पुलिस में है। तेजशकर और पद्मशकर छोटे है। ज्ञानशकर के लडके का नाम मायाशंकर और लड़की का नाम मुन्नी है। ज्ञानशकर विगड़े रईस हैं।

आरभ में इन्ही ज्ञानशकर का चपरासी गिरधर महाराज घी के लिये रुपये बाँटता है। गाँव के लोगो में सभी घी देने को राजी होते है पर मनोहर अकडता है। उस का लडका बलराज है। वह उस से भी तेज है। बाप के कारिन्दे से डरने पर कहता है—"कोई हम से क्यो माँगे ? किसी का दिया खाते है कि किसी के घर माँगने जाते है। अपना तो एक पैसा नही छोडते तो हम धौस क्यो सहें ? नही हुआ मैं, नही तो दिखा देता।" मनोहर फिर भी डरता है और चाहता है कि कारिन्दा मान जाए। पहले उस की पत्नी विलासी जाती है। कारिन्दा नही मानता। फिर जमीदार के पास कादिर खाँ के साथ जाता है मनोहर। पर ज्ञानशकर नही मानता। मनोहर इस में कादिर खाँ का अपमान समझता है। दोनो पक्षो के बीच यह पहली गाँठ पड़ती है।

गाँव के लोगो और जमीदार के आदमियो के बीच जो यह सघर्ष चलता है सो तो है ही, स्वय ज्ञानशकर के घर में भी सघर्ष चलता है। वे सोचते है कि चाचा का इतना बडा परिवार है और उन का कम। अत बटवारा हो जाए तो अच्छा है। इस का निश्चय करने का अवसर ज्ञानशकर को तब मिलता है, जब प्रभाशकर का पुत्र दयाशकर किसी मामले मे फँस जाता है और इन के लाख प्रयत्न करने पर भी इन के सहपाठी डिप्टी ज्वालासिह उसे बरी कर देते है। ईर्ष्या से सतप्त ज्ञानशकर अलग हो जाते है।

डिप्टी ज्वालासिह लखनपुर के दौरे पर आते है तो बेगार के मामले को ले कर फिर किसान एक हो जाते है। अब की बार मनोहर नही उस का बेटा बलराज आगे आता है। हट्टा-कट्टा और निर्भीक युवक है। सीधा ज्वाला-

सिंह के पास पहुँचता है। ज्वालासिंह उसकी बात को मानकर बेगार रुकवा देते हैं। यह दूसरी बार गौसखां की हार होती है। वह अपने मन में विष पालता रहता है।

इधर ज्ञानशकर को अपने एकमात्र साले के निधन का तार मिलता है और वे अपनी पत्नी विद्या के साथ लखनऊ पहुँचते हैं। विद्या की एक बड़ी बहन और है गायत्री, जो विधवा है। उसकी गोरखपुर में बड़ा भारी ज़मींदारी है। ज्ञानशकर के ससुर राय कमलानंद साहित्य-सगीत-रसिक थे। अत. ज्ञानशकर उनकी जमींदारी का काम देखने लगे और साथ-साथ गायत्री से प्रेम-सबध स्थापित करने की युक्ति भी सोचने लगे। एक दिन थियेटर गये तो उन्होंने अपने मन की बात गायत्री से कह दी। गायत्री स्तब्ध रह गई और दूसरे दिन गोरखपुर चली गई। ज्ञानशकर को बुरा तो लगा पर वे प्रेम के साथ-साथ इस बात का भी प्रयत्न करने लगे कि राय कमलानद दूसरी शादी न करें, जिससे कि उनका लड़का मायाशकर एक बडी संपत्ति का उत्तराधिकारी होने से रह जाय। ससुर ने एक दिन उनकी शादी करने की शका को दूर भी कर दिया।

डिप्टी ज्वालासिंह की बलराज से हमदर्दी थी पर उनके मुशी ईजाद हुसेन और गौसखाँ ने मिलकर उन्हें बेगार वाली घटना की तहकीकात करने के लिये राज़ी कर लिया। दारोगा दयाशकर तहकीकात के लिये आये। बलराज को पकड लिया गया लेकिन गाँव के हिंदू-मुसलमान एक थे इसलिये उन्होने बलराज का कुछ नही बिगाड़ा। गौसखाँ ने रिश्वत दी तो दारोगा ने बयान बदलवाने चाहे पर कादिरखाँ के कारण कुछ न हो सका। हार कर दारोगा जी मुचलका लेकर चले गये। छोटे अहलकारों और कारिंदों पर भयकर हमला था।

गांव का यह संघर्ष यों ही बढ रहा था कि अचानक प्रेमशंकर अमरीका से घर लौटे। ज्ञानशंकर को उनके आने से प्रसन्नता न हुई क्योंकि जमींदारी के बटवारे का भय लगा। उन्होंने प्रेमशंकर को बिरादरी से निकालने का जाल रचा। और उनकी पत्नी श्रद्धा को भी अपने पक्ष में कर लिया। प्रेमशंकर कृषिशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करके आये थे और किसानों की सेवा उनके जीवन का ध्येय हो चुका था। इसलिये उन्होंने स्थिति देख कर अपने अधिकार छोड दिये। उन्होंने लखनपुर को भी छोड दिया और हाजीपुर नामक एक गांव के किसानों के बीच रहकर, जहां बाढ में उन्होंने सहायता की थी, सेवाकार्य करने लगे।

भाई के हिस्से की जमींदारी के भी मालिक हो जाने पर ज्ञानशंकर बडे प्रसन्न हुए और उन्होंने किसानों पर इजाफा लगान का दावा किया। इसी बीच उन्हें गोरखपुर से गायत्री का पत्र मिला, जिसमें उनको अपनी जमींदारी का प्रबंधक बनाने के लिये लिखा था। पत्र पाकर ज्ञान-शंकर गोरखपुर गये और प्रेमशंकर लखनपुर के लोगों की दशा देखने आये। ज्वालासिंह भी साथ थे। उन्होंने किसानों की दयनीय दशा देखी तो ज्ञानशंकर का दावा खारिज कर दिया। इसके बाद अपील की तो वह भी खारिज कर दी। प्रेमशंकर ने इसमें किसानों का बडा साथ दिया।

ज्ञानशंकर ने गोरखपुर में रुपया और यश दोनों कमाये पर लखनपुर के एक झगडे ने उन्हें फिर खींचा। बात यह हुई कि गौसखां संगठित किसानों से हार-पर-हार

खा कर बौखला उठा था। इसलिये उसने गाँव के मुख्य तालाब पर रोक लगा दी। ताऊन मे गाँव के अनेक पट्ठे जा चुके थे। गाँव वाले वैस ही दुखी थे। इस रोग ने जून के महीने मे पशुओ की जाने लेना शुरू किया। इसके साथ ही गौसखाँ ने दयाशकर की जगह आने वाले नूरआलम दारोगा से सूक्खू चौधरी को कोकीन वरामद कराके दो वर्ष की कैद करा दी। गौसखाँ के ये अत्याचार तो थे ही, लश्कर वालों के भी अत्याचारो की सीमा न थी। पुलिस के आई० जी० का दौरा हुआ तो सवा सौ आदमी उनके लश्कर के गाँव में आ धमके। बेगार चली। घोड़ो को घास छीलो, पानी भरो, दूध लाओ, यह करो वह करो। इसमें गाँव का गाँव लग गया। दो वजे साहव के टैनिसकोर्ट वनाने को घास छीलने के लिये बुड्ढे तक पकड मगाये गये। घास छिल गई पर अभी कोर्ट लिपा नही। दुखरन भगत से कहा गया तो उसने इन्कार कर दिया। तहसीलदार ने इस गुस्ताखी पर दुखरन को खड़े-खडे जूतो से पिटवाया। गाँव वाले विद्रोह के लिये तैयार होते है पर प्रेमशकर के कारण मान जाते है। घर आकर दुखरन भगत शालिग्राम की मूर्ति को फेंक देता है।

गौसखाँ का हौसला वढा और क्वार में उसने चरावर रोक दिया। मनोहर की पत्नी विलासी ढोर चरा रही थी। गौसखाँ और फैज् ने आकर उसे रोका तो वह तन गई। दोनो ने उसे धक्के से गिरा दिया। पति और पुत्र को पता चला तो उन्होने उस समय तो कुछ न कहा पर रात को मनोहर ने गड़ासे से गौसखाँ के टुकड़े कर दिये। वलराज थाने पहुँचा और सारा दोष अपने ऊपर लेकर गिरफ्तार हो गया। गाँव के अन्य लोग और प्रेमशकर भी पकड़े गये। वकील इर्फान अली किसानो की पैरवी करते है पर रुपयो के

लिया । डाक्टर प्रमनाथ चोपडा सोशलिस्ट के रूप मे किसानो के खिलाफ बयान देते है, जिससे मुकदमा सैशन सुपुर्द हो जाता है । मनोहर को घोर आत्मग्लानि होती है और वह स्वय गाँव के दु ख का कारण अपने को मान कर जेल के भीतर ही आत्महत्या कर लेता है । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप गाँव वाले सगठित होते है और प्रेमशकर के प्रयत्नो से वे मुकदमा जीत जाते है ।

ज्ञानशकर मुकदमे के बीच मे ही अपनी विजय पर आश्वस्त होकर गोरखपुर चले जाते है । अब भी वे भक्ति के आडम्बर से गायत्री का मन जीतने की कोशिश करते है । रासलीला मे स्वय कृष्ण बनते है और गायत्री राधा । एक बृहत् धार्मिक सम्मेलन में गायत्री को सभापति बनाकर उसे खूब यश दिलाते है, जिससे वह पूर्णतया इनके वश मे हो जाती है । इसी बीच राय कमलानन्द ४-५ लाख लगाकर लखनऊ में अन्तर्राष्ट्रीय सगीत सम्मेलन करते है, जिसमें ज्ञानशकर और गायत्री-भी जाते है । ससुर-जमाई में खर्च पर कहा सुनी होती है तो ससुर गायत्री के प्रति उनकी पाप-भावना का भडाफोड करते है । ज्ञानशकर लज्जा से डूबने जाते है पर लौट आते हैं । पीछे राय कमलानद को विष देकर मारने का यत्न करते है । पर वे योगबल से बच जाते है ।

लखनऊ से ज्ञानशकर और गायत्री काशी आते है और एक नाटक मे भाग लेते है । रात को एकान्त मे ज्ञानशकर अपने को कृष्ण और गायत्री को राधा मान कर आत्मसमर्पण करता है कि विद्या आ पहुँचती है । गायत्री आत्मग्लानि का अनुभव करती है । धीरे-धीरे ज्ञानशकर से सबध विच्छेद करती है और ज्ञानशकर के पुत्र मायाशकर को ज़मीदारी सौंपकर

तीर्थाटन को चली जाती है। चित्रकूट में पहाड से फिसल कर मर जाती है। इधर राय कमलानद भी अपनी जायदाद मायाशकर को दे देते है। मायाशकर प्रेमशकर की सहायता से काम सभालते है पर तिलकोत्सव के समय वे अपने समस्त अधिकारो को छोड देते है। ज्ञानशकर निराश होकर गगा की शरण लेते है। इर्फानअली, ज्वालासिंह, प्रेमनाथ-चोपडा आदि प्रेमशकर के प्रेमाश्रम में रहने लगते है।

यदि इस कथा का विश्लेषण किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इस मे एक साथ दो कथाएँ चलती है—एक का सबध लखनपुर गाँव से है और दूसरी का ज्ञानशकर गायत्री से। लखनपुर वाली कथा के नायक मनोहर और बलराज है क्योकि उनका योगदान इस कथा में विशेष है। कुछ विद्वानो की राय है कि लखनपुर का गाँव ही इस कथा का नायक है क्योकि गाँव का हर किसान-मज़दूर सचेत है और अपने अधिकारो के लिए लड रहा है। मनोहर अपने बेटे बलराज से कहता है—"कोई परवाह नही। कुल्हाड़ा हाथ में लोगे तो सब ठीक हो जाएगा।" बलराज की सजगता देखिये—"तुम लोग तो ऐसी हँसी उडाते हो जानो कास्तकार कुछ होता ही नही। वह ज़मीदार की बेगार करने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास रूस से जो पत्र आता है, उस में लिखा है कि कास्तकारो का ही राज्य है। वह जो चाहते है करते है। उसी के पास कोई और देश बलगारी है वहाँ अभी हाल की बात है कास्तकारो ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसान और मजदूरो की पंचायत राज्य करती है।" कादिरखाँ का व्यग कलाकार की तरह तीखा है—"अरे जो अल्लाह को यही मजूर होता कि हम लोग इज्ज़त-आबरू से रहे तो कास्तकार क्यो बनाता? ज़मीदार न बनाता, चपरासी न बनाता, थाने का कान्स्टेबिल न बनाता कि बैठे-बैठे दूसरो पर हुकम चलाया करते।" न

केवल पुरुष पर स्त्री भी वैसी ही वीरता से पूर्ण है । जब गोसखाँ चरागाह से ढोरो को हाँकने के लिये कहता है, तो विलासी जवाब देती है—"क्यो निकाल ले जाऊँ ? चरावर सारे गाँव का है, जब सारा गाँव छोड देगा तो हम भी छोड दगे ?" ऐसा लगता है कि रूस में सन् १७ की क्राति की सफलता से समस्त विश्व में जो एक जागृति आई थी उसी का प्रतिबिम्ब 'प्रेमाश्रम' मे है । गाधीवाद के विश्वासी होते हुए भी प्रेमचद एक स्थान पर कहते हैं—"सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धात भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध हो गया ।" इस प्रकार पूरा उपन्यास विद्रोह की भावना से भरा है। प्रेमशकर इस उपन्यास के गाधीवादी सुधारक है जो आश्रम बना कर रहते है । मायाशकर का सभी ज़मीदारी को छोड देना भी गाधीवादी प्रभाव से ही सभव हुआ है । गाधीजी ने उन दिनो गाँवो का यही रूप रखा था । ज़मीदार और उन के कारिन्दे की ज्यादती, लश्कर और पुलिस की ज्यादती, बेगार और अत्याचार का नगा चित्र प्रेमचद ने बडी कुशलता से खीचा है । इन्ही से गाँव श्मशान बन जाते हैं ।

ज्ञानशकर की कथा मे उच्चवग और स्वार्थपरता का चिह्न है । ज्ञानशकर अपने भाई तक को नही चाहता । उसे सम्पत्ति और एश्वर्य का ऐसा लोभ है कि उस के लिए अपने ससुर को ज़हर तक दे देता है । डाक्टर रामविलास शर्मा का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में ज्ञानशकर तमाम खलपात्रो का सिरमौर है ।" (प्रेमचन्द और उन का युग पृष्ठ ४३) ज्ञानशकर द्वारा सम्मिलित परिवार प्रथा का खोखलापन अच्छी तरह दिखाया गया है । गायत्री के साथ उस की लीला में धार्मिक पाखण्ड का भण्डाफोड किया गया है । हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य

की समस्या और उस के नाम पर व्यापार का पता ईजाद-हुसैन और उन की अजुमने इत्तिहाद से चलता है । वकील इर्फानअली और डाक्टर प्रियनाथ चोपड़ा के चरित्र पूंजीवादी समाज की निम्न मनोवृत्ति के पोषक है । वैसे अन्त मे उन का भी हृदय-परिवर्तन हो जाता है । वस्तुत इस उपन्यास को अपने युग का महाकाव्य कहा जा सकता है । अपने किसी दूसरे उपन्यास मे प्रेमचन्द ने गाँव की समस्याओ को इतनी गहराई और विस्तार से नही छुआ । आज भी यह उतना ही नया है, जितना अपने प्रथम प्रकाशन के समय था ।

'रगभूमि' प्रेमचन्द जी का दूसरा राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यास है । 'प्रेमाश्रम' मे प्रेमचन्द ने किसान-मज़दूर और जमीदार-जागीरदार का सम्बन्ध दिखाया था । 'रंगभूमि' मे निम्नवर्ग और पूंजीपति का सघर्ष दिखाया गया है । यह उपन्यास भी गाँव को ले कर चला है पर वह गाँव शहर से दूर नही है । उद्योगपति शहर से अधिक दूर जा भी नही सकता । इस का नायक अन्धा भिखारी सूरदास है । वह औद्योगीकरण के विरुद्ध समस्त गाँव को सगठित करता है और अन्त तक लडता है । पांडेपुर में उस की झोपडी है । वह भिखारी है । १० बीघा ज़मीन भी उस के पास है । उस के गाँव मे दूध बेचने वाले, खोचा लगाने वाले, पान बेचने वाले, ताडी बेचने वाले आदि ही रहते है । उस ने ५००) भीख माँग कर जमा किये है । जानसेवक नामक एक ईसाई सिगरेट का कारखाना खोलना चाहता है और गाँव की ज़मीन के साथ उस की जमीन को भी लेना चाहता है । सूरदास उसके लिये राजी नही होता है, सब को उस के विरोध मे सगठित करता है । जानसेवक बनारस म्यूनिस्पल बोर्ड के प्रधान राजा महेन्द्रकुमार का आश्रय लेता है ।

महेन्द्रकुमार की पत्नी का नाम इन्दु है । यह इन्दु राजा भरतसिंह की लडकी है । भरतसिंह के परिवार में, उन की पत्नी जाह्नवी और उन का लडका विनय है । एक बार इन्ही भरतसिंह के परिवार के घर मे आग लगने पर सोफिया ने रक्षा की थी अत यह परिवार सोफिया का कृतज्ञ है । सोफिया रहती भी इन्ही के यहाँ है । उस के परिवार मे उस के बाबा ईश्वर सेवक, पिता जानसेवक माता मिसेज सेवक और भाई प्रभु-सेवक है । पिता कजूस पूंजीपति है और माता कर्कशा । सोफिया को स्नेह नही मिलता और वह राजा भरतसिंह के परिवार मे ही रहती है । जाह्नवी उसे अपनी लडकी की तरह मानती है । पर जब देखती है कि विनय उस के प्रेम-चक्र में फँस सकता है तो वह विनय को जोधपुर भेज देती है, जहाँ वह भीलो में काम करता है । उस की माँ उसे एक आदर्शवादी युवक देखना चाहती है । विनय सोफिया को पत्र लिखता है पर जाह्नवी उसे पढने का अवसर नही देती । सोफिया कुछ निराश-सी हो कर अपने माता-पिता के पास लौट आती है । मिसेज़ सेवक चाहती है कि सोफिया और क्लार्क में परिचय हो जाये ताकि जानसेवक जो ज़मीन लेना चाहता है, उस में क्लार्क सहायक हो सके । लेकिन इसका उल्टा प्रभाव होता है । सोफिया सूरदास की ज़मीन का इस प्रकार छीना जाना पसद नही करती । क्लार्क सोफिया का पक्ष लेता है । लेकिन महेन्द्रकुमार गवर्नर से मिल कर ज़मीन दिलवा देता है और बेचारे क्लार्क को उदयपुर तबादला करा के जाना पडता है ।

विनय उदयपुर में पहले से ही है । क्लार्क पोलिटिकल एजेंट के नाते अग्रेज़ी साम्राज्यवाद के सरक्षक रहते हैं और विनय लोक सबध के नाते उन का विरोधी । उसे एक

ओर अंग्रेजी साम्राज्यवाद से लड़ना पड़ता है तो दूसरी ओर भारतीय सामंतवाद से। संघर्ष मे विनय जेल जाता है। तभी सोफिया आती है और क्लार्क के साथ रहने लगती है। सोफिया और क्लार्क अविवाहित होने पर भी पति-पत्नी की तरह रहते है। सोफिया का इसमे एक ही उद्देश्य है कि वह विनय की सहायक हो सके। विनय उसका आराध्य है। वह उससे दो-तीन बार मिलती भी है।

विनय के पिता भरतसिंह प्रेमवश नायकराम पडा को भेजते है, जो झूठ-मूठ खबर देता है कि जाह्नवी मृत्यु-शैया पर है। विनय जेल से भागता है पर तभी जसवन्तपुर में क्लार्क की नीति के विरोध मे उपद्रव हो जाता है। विनय क्लार्क के बगले पर पहुँचता है, जिससे जनता उसको गद्दार समझती है। इस संघर्ष मे वीरपालसिंह राजद्रोही आता है, गोलियाँ चलती है और घायल सोफिया उसके कब्जे मे घने जगल में पहुँचती है। विनय और नायकराम इद्रदत्त स्वयंसेवक की सहायता से वीरपाल और सोफिया से मिलते है। लेकिन सोफिया यह समझती है कि विनय अधिकारियो से मिल गया है इसलिये वह उसकी खूब भर्त्सना करती है।

अचानक जाह्नवी का पत्र पाकर विनय बनारस लौटता है तो ट्रेन मे सयोगवश उसकी भेंट सोफिया से होती है। यहाँ विनय की वास्तविक स्थिति का पता जब उसे चलता ह तो वह विनय के प्रति फिर पूर्ववत प्रेमभाव धारण कर लेती है। दोनो सलाह कर क बीच के स्टेशन पर उतर जाते है और एकात मे एक वर्ष तक रहते ह। इस बीच सोफिया प्रेम की पवित्रता को कायम रखती है क्योंकि वह

जाह्नवी की विचारधारा से परिचित है। एक वर्ष बाद वह एक दिन पहले जाह्नवी के पास पहुँचती है और दूसरे दिन विनय भी।

इस बीच सूरदास की जमीन के लिये भी कशमकश चलती रही है। सूरदास की अनिच्छा से ज़मीन तो जानसेवक को मिल ही गई थी। गाँव वालो को जानसेवक ने फैक्टरी खुलने से होने वाले लाभ का लोभ दिखाकर उनमें फूट डाल दी थी इसलिये सूरदास का प्रतिकार भी व्यर्थ हो गया था और अन्ततोगत्वा वहाँ फैक्टरी खुल गई थी। फैक्टरी के कारण पाण्डेपुर की बस्ती को खाली कराने की योजना बनी, इस उद्देश्य से कि मज़दूरो के मकान बनाये जा सकें। इस योजना को लेकर सूरदास फिर तन गया और उसने कहा कि वह अपनी झोंपडी को किसी प्रकार भी नही छोड़ेगा। वह अड जाता है। नगर में सनसनी फैल जाती है। विनय, सोफिया और इंद्रदत्त स्वयंसेवको का संगठन करते हैं। विनय अपने पिता की जायदाद मे से अपना नाम हटा लेता है। सोफिया का भाई प्रभुसेवक उनकी संस्था की सहायता के लिये दस हज़ार का चैक भेजता है। वह एक विश्वविख्यात कवि हो गया है और उसे चालीस हज़ार का पुरस्कार मिला है। सूरदास की दृढता से हडताल होती है। राजा महेन्द्रकुमार सूरदास से चिढे हुए होने के कारण सारे पुरवे के मकानो को गिरवा देते हैं। बच रहती है सूरदास की झोंपडी। उसी के सामने सूरदास चुपचाप खड़ा रहता है। उसने भैरो की स्त्री सुभागी को अपने यहाँ इसलिये रख लिया था कि वह उसे बहुत तंग करता था। गाँव के लोग सुभागी को विलास की वस्तु बनाना चाहते थे। लोग उससे चिढगये थे। उसने अपने भतीजे तक को सजा करा दी थी, सुभागी के ऊपर बुरी नीयत रखने के जुर्म में। वह

गाँव के उस नैतिक पतन का भी विरोधी था जो फैक्टरी खुलने से हुआ था और औद्योगिक शोषण का भी। दोनों के विरोध में वह सत्याग्रही बन कर खडा रहता है। अचानक एक गोली उसके आकर लगती है। हिंदुस्तानी फौज गोली चलाने मे इकार करती है तो गोरखा फौज उसके बदले गोली चलाती है। सत्याग्रह का सचालन विनय और इद्रदत्त कर रहे है। जब विनय मच पर शात करने को आता है तो जनता व्यग करती है, जिससे वह पिस्तौल से आत्महत्या कर लेता है। इद्रदत्त फौज की गोली से मारा जाता है। सूरदास अस्पताल मे भर्ती हो जाता है, जहाँ उसकी सोफिया, जाह्नवी, इदु, भरतसिह आदि सेवा करते है। महेन्द्रकुमार और जानसेवक भी उसे देखने आते है। विनय के मरने पर सोफिया की माँ क्लार्क से उसे बाँधना चाहती है पर वह गंगा मे डूब मरती है। यो आधिकारिक कथा-वस्तु का अन्त होता है।

एक प्रासगिक कथा ताहिरअली की भी है, जो पहले जानसेवक के चमडे के गोदाम के दारोगा थे, अब मिल के है। स्त्री कुलजुम, लडका साबिर और लडकी नसीमा के अतिरिक्त सौतेली माँओ से माहिर, जाहिर और जाबिर तीन लड़के है। बडी सौतेली माँ जैनव और छोटी रकिया लड़ाका है। तीस रुपये मे गुज़र न होती देख कर रोकड़ के रुपये चुराते है और जेल जाते हैं। माहिर अली दारोगा होने पर भी उनकी अनुपस्थिति में बच्चो की कोई सहायता नहीं करता। जेल से लौट कर बेचारे को जिल्दसाजी से पेट भरना पड़ता है।

राजा महेन्द्रकुमार का पतन हो जाता है और व सूरदास को नीचा दिखाने के लिये उसकी मूर्ति को तोड़ने जाते हैं;

जिसके नीचे दबकर स्वय भी मर जाते है । उनकी पत्नी इंदु ने उन्हे कभी श्रद्धा से नही देखा ।

अन्त मे भरतसिह भी देशभक्ति और परोपकार छोड कर आनद से जीवन बिताने मे विश्वास रखने वाले हो जाते है। जाह्नवी और इंदु सेवादल में काम करने लगती है ।

'रगभूमि' प्रेमचद का सबसे बडा उपन्यास है । 'प्रेमाश्रम' में किसान जमीदार सघर्ष था लेकिन जमीदारो के प्रतिद्वन्द्वी उद्योगपतियो का भी समाज में कम दबदबा नही रहा । 'रगभूमि' के इन्ही उद्योगपतियो के कारनामो और उनके विरुद्ध उभरती जनता की भावनाओ का चित्रण रगभूमि में हुआ है । यह विशाल उपन्यास एक ओर अग्रेजी राज्य की शोषक-प्रवृत्ति की ओर सकेत करता है तो दूसरी ओर रियासतो की राजनीति पर प्रकाश डालता है । एक ओर यह सत्याग्रही सूरदास के जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर काग्रेस की अहिसात्मक राजनीति की अपेक्षा अधिक उग्र आतकवादी वीरपाल की कार्यवाहियो को उचित ठहराता है । इस में हिदू-मुसलमान दो प्रमुख जातियो के अतिरिक्त ईसाई जाति को भी खडा किया गया है और यो इसका चित्र पट विस्तृत कर दिया गया है । अग्रेजो का प्रतिनिधि क्लार्क है । ऐसा प्रेमचद के अन्य किसी उपन्यास मे नही हुआ । साराश यह कि अपने युग की समस्याओ को प्रतिबिबित करने वाला यह प्रेमचद का सबसे बडा उपन्यास है और 'गोदान' से पहले प्रेमचद ने इसे अपना सर्वश्रेष्ठ उपन्यास भी कहा था ।

इस उपन्यास के सम्बन्ध में लोगो की भिन्न-भिन्न रायें है । श्री मन्मथनाथ गुप्त ने सूरदास के सामाजिक विचारों

की मीमासा में कहा है कि "वे गांधीवादी हैं पर एक बीते हुए युग को प्रत्यावर्तित करना चाहते हैं इस लिये वे प्रतिक्रियावादी हैं ।" (कथाकार प्रेमचद पृष्ठ ३०८) श्री रामरतन भटनागर ने 'रंगभूमि' को गाँधीवादी दर्शन की सब से बडी कहानी मानते हुए सूरदास को गाधी जीवन-दर्शन का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक माना है। (प्रेमचंद पृष्ठ ११) डाक्टर राम विलास शर्मा सूरदास में भारत की अजेय जनता का स्वर सुनते हैं (प्रेमचन्द और उन का युग पृष्ठ ९३) वस्तुत. किसी श्रेष्ठ कृति की विशेषता यह है कि उसे भिन्न-भिन्न विचार वाले अपने पक्ष समर्थन के लिये श्रेष्ठ उदाहरण कह कर रख सकते है। 'रगभूमि' ऐसी ही कृति है । हमारी समझ मे यह २० और ३० के बीच के भारत (ब्रिटिश भारत और रियासती भारत दोनो) की राजनैतिक और उस से सबधित सामाजिक और धार्मिक समस्याओ का दिग्दर्शन कराने वाला उपन्यास है। उदयपुर की कथा जोड कर प्रेमचद ने बीच में ही छोड़ दी है। इस का कारण यह है कि तब रियासतो की स्थिति ही ऐसी विचित्र थी कि उस का कोई हल नही सूझता था । दूसरी बात यह है कि विनय जैसे उच्च मध्य वर्ग के नेताओ की मनोवृत्ति का भी उस कथा से पता चलता है, जो पुनरुत्थान-वादी भावनाओ का शिकार हो कर प्रजा पर अत्याचार करने मे नही चूकता ।

रगभूमि का मूल उद्देश्य औद्योगीकरण की बुराइयो की ओर सड्केत करना है। किस प्रकार कारखाने गाँवो को मरघट बना कर पनपते हैं और उन के द्वारा सामान्य मजदूरो मे अनैतिकता फैलती है इस का बडा विस्तार से चित्रण रग-भूमि' में मिलता है। मजदूरो के बारे मे सूरदास कहता है—

'वे सारी बस्ती में फैले हुए है और रोज ऊधम मचाते है। हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतो को नही छेडा था। न कभी इतनी चोरियाँ हुई, न कभी इतने धडल्ले से जुआ हुआ, न शराबियो का हुल्लड रहा। जब तक मज़दूर लोग यहाँ काम पर नही आ जाते, औरतें घरो से पानी भरने नही निकलती। रात को इतना हुल्लड होता है कि नीद नही आती।" भैरो की बहू सुभागी को जीना मुश्किल हो जाता है। वह इस बात की प्रतीक है कि कारखानो के पास के गृहस्थो के जीवन की विकृति के कारण नारी का अस्तित्व कुछ भी नही रह जाता। प्रेमचद न उस के द्वारा विद्रोही नारी की आत्मा की आवाज़ बुलन्द की है।

विनय और सोफिया का अशरीरी प्रेम प्रेमचद की अपनी भावनाओ के अनुकूल है। वे एक ईसाई लडकी को हिंदू युवक से प्रेम करने की तो छूट देते है पर उस से शादी नही कराते। यद्यपि सोफिया धार्मिक कट्टरता से दूर है—इतनी कि कृष्ण के चरित्र को आदर्श मान कर उस की उपासना करती है पर फिर भी वह प्रेम के वासनात्मक स्तर पर उतर कर विनय की नही हो पाती। प्रेम की पवित्रता की रक्षार्थ ही वह क्लार्क से शादी नही करती। उस मे भारतीय नारी के गुणो का उत्कर्ष है।

ताहिरअली की कथा मुसलमान जनता की भावनाओं के लिए आई है। अपने इतने बडे परिवार के लिये ताहिरअली बेचारा गबन करता है। 'गबन' का रामनाथ भी वही करता है पर वह पत्नी के गहनो की माँग पूरा करने के लिये करते है, जब कि ताहिरअली बच्चो का पेट पालने के लिये। उन की पत्नी कुलसुम भी जालपा की तरह वीरता से दुख का सामना करती है।

महेन्द्रकुमार की कथा से यह पता चलता है कि ज़मीदारो और पूंजीपतियो के स्वार्थ एक है। करनसिह का अन्त का जीवन यह बताता है कि अमीर की लोक-सेवा एक दिखावा मात्र होती है । इंदु और महेन्द्रकुमार के बीच आदर्शों की खीचतान मे प्रेमचंद ने इस वर्ग के दाम्पत्य-जीवन की विडम्बना की ओर सकेत किया है ।

जानसेवक पूंजीवादी मनोवृत्ति का प्रतीक है जो नाना-प्रकार के प्रलोभन दे कर जनता को फुसलाता है । उसकी पत्नी और भी क्रूर है । वह पैसे के मोह मे पुत्र-पुत्री की भावनाओ की भी चिन्ता नही करती । वे लोग गिर्जे मे जाते है तो केवल समाज को दिखाने के लिये ।

प्रेमचद ने धर्म की बड़ी खिल्ली उडाई है । एक ओर जानसेवक और ताहिरअली अपने-अपने धर्म या कहो आडम्बर मे कट्टरता से विश्वास रखते है तो दूसरी ओर वे अन्य धर्मों के प्रति अनुदार भी है ।

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है कि 'रगभूमि' मे एक सब से खटकने वाली चीज़ है कि रोमास होते हुए भी इस में बराबर विषादमय अन्त की छाया चलती है । (कथाकार प्रेमचद पृष्ठ ३३७) यह स्वाभाविक है । प्रेमचद उगते हुए पूंजीवाद को ले कर चले है उस के कारण राजनीति, धर्म और व्यक्तिगत जीवन मे कैसा भयंकर परिवर्तन होता है, यह दिखाना उन का लक्ष्य है । रोमास पर उन की दृष्टि नही है । सब से बड़ी बात तो 'रगभूमि' में यह है कि सूरदास अन्त तक हार नही मानता और एक खिलाड़ी की भाँति जीवन की लड़ाई लड़ता है ।

यह प्रेमचन्द का पहला चरित्र प्रधान उपन्यास है । चरित्र भी एक अन्धे भिखारी का है । प्रेमचन्द जनता के

कलाकार थे इसीलिये उन्हो ने एक ऐसे व्यक्ति को अपन उपन्यास का नायक बनाया है, जिस का काई स्थान ही समाज में नही है । सूरदास प्रेमचन्द के अमर चरित्रो में है । उस के साथ ही पुरवे के अन्य व्यक्तियो को भी प्रेमचन्द ने रुचि से चित्रित किया है । यह देख कर लगता है कि उन्हो ने गाँव और नगर की आमने-सामने टक्कर कराई है, और यद्यपि औद्योगिक विजय मे नगर जीतता है पर प्रेमचन्द की सहानुभूति गाँव की दृढता के प्रति है । यह प्रेमचन्द के जन-कलाकार होने का सब से बडा प्रमाण है ।

'कर्मभूमि' प्रमचन्द का तीसरा राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यास है । यह उपन्यास १९३०-३१ के आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है । इसकी कथावस्तु में अछूतोद्धार जो ३०-३१ के आन्दोलन का एक प्रमुख अग था, को ही कथा का आधार बनाया गया है । उस के साथ कजर जैसी जरायम पेशा कौम को भी इस कथा मे स्थान दिया गया है । 'रगभूमि' की भाँति यह भी उन की प्रतिनिधि रचना है । कथा का नायक अमरकान्त है । जिस का पिता समरकान्त काशी का एक धनी व्यापारी है पर वह है कजूस । वह सूदखोर है । अमरकान्त की माता का स्वर्गवास बचपन मे हो गया था । उस की एक वहन और है नैना ।

अमरकान्त का विवाह लखनऊ की एक धनी विधवा की पुत्री सुखदा से होता है । लेकिन सुखदा फैशनेबुल है । अमरकान्त से उस की पट नही पाती । पहले अमर पढने में अच्छा नहीं था पर जब से वह मैट्रिक मे प्रान्त में सर्व-प्रथम आया तब से उस की बुद्धिमत्ता का सिक्का भी लोगो पर बैठ गया । उस ने अपने व्यवसाय को भी कुछ देखना

आरम्भ कर दिया। परन्तु उसका मूल ध्येय राजनीति द्वारा देश सेवा का है। वह दूकान के छल-प्रपच में रम नहीं पाता। वह गावो मे घूमता है और जानकारी प्राप्त करता है। एक दिन गाँव मे गोरो द्वारा एक नारी पर बलात्कार की घटना देखकर उसका दिल अग्रेजो के प्रति घृणा से भर जाता है और वह और भी दृढता से राष्ट्र सेवा का व्रत लेता है। एक दिन दूकान पर ही एक भयंकर घटना घटती है। एक स्त्री एक गोरे को छुरे से घायल कर देती है। पता चलता है कि यह वही स्त्री है, जिसकी इज्जत उस दिन गाँव में गोरो ने लूटी थी। अमरकान्त उस स्त्री को बचाने के लिये भारी प्रयत्न करता है। उसकी सहायता के लिये डाक्टर शान्तिकुमार, अमर की सास रेणुकादेवी, जो बनारस ही आ गई है और सलीम विशेष तत्परता दिखाते है।

उसकी दूकान पर एक बूढी पठानिन भी प्रति मास तनखा लेने आती थी, जिसका पति समरकान्त का विश्वास-पात्र नौकर था। उसकी पोती सकीना से अमरकान्त का परिचय होता है और वह उसके प्रेम में फँस जाता है। अमरकान्त के एक पुत्र का जन्म होता है लेकिन सकीना के प्रति उसका मन खिचता चला जाता है। वह उससे अपना प्रेम भी प्रकट कर देता है, जिस पर सकीना अपने निश्चित विवाह को भी रोकने को तैयार हो जाती है। लेकिन एक दिन दोनो पठानिन द्वारा बात करते पकड़े जाते हैं। अमरकान्त पठानिन की फटकार पाकर लज्जित होता है। उधर समरकान्त उसे बीबी-बच्चो के साथ अलग कर देता है और बेचारा अमरकान्त खद्दर के गट्ठे पीठ पर लाद कर बेचता है। प्रेम मे निराशा और घर से निष्कासन

उसे भागने को विवश करते है और वह हरिद्वार के पास एक गाँव मे डेरा लगाता है।

यह गाँव अछूतो का है। वह उन्ही में रहता है। उनके बच्चो को पढाता है और उनमें सामाजिक और राजनैतिक चेतना जागृत करता है। वे शराब पीना और माँस खाना छोड देते है। वे महन्त जी से लगान न देने के लिए भी अड जाते है। अमर उनके आन्दोलन को चलाने की चेष्टा करता है। यहाँ उसकी भेंट पुन्नी से होती है और वह उसके प्रति झुकता है पर वह उसकी पूजा करने का व्रत लेकर रह जाती है। वह भी उसके कार्य मे सहायता देती है।

नैना की शादी नगर के ही प्रतिष्ठित सेठ धनीराम के पुत्र मनीराम से हो जाती है। मनीराम बडा ही दभी है। वह अपनी पत्नी की तो चिन्ता करता ही नही। एक दिन सुखदा का भी अपमान कर देता है। अमरकान्त के चले जाने के बाद सुखदा अपना सारा समय समाज सेवा मे देती है। वह डाक्टर शान्तिकुमार के सेवाश्रम मे कार्य करती है। एक दिन मन्दिर मे चमारो को पीटने से झगडा होता है। जिसमें जनता विजयी होती है और अछूतो को मन्दिर प्रवेश का अधिकार मिलता है। सुखदा की माँ अपने दान से एक ट्रस्ट बनाती है, जिससे सेवाश्रम के चलने मे बाधा न हो। सेवाश्रम के कार्यकर्ताओ द्वारा एक बार फिर सघर्ष छिडता है। अब की बार सघर्ष का कारण म्यूनिस्पलिटी से मजदूरो के मकानो के लिए जमीन की माँग होती है। इसमें भयकर हडताल होती है। सुखदा, बूढी पठानिन और डाक्टर शाति कुमार सब जेल जाते है और नैना व्याख्यान देते हुए अपने ही पति की गोली से मारी जाती है। पर विद्रोह सफल होता है और मजदूरो को जमीन मिल जाती है।

इधर सलीम आई० सी० एस० होकर उसी हलके में अपनी नियुक्ति कराता है, जहाँ अमरकांत कार्य कर रहा है। लगान-बन्दी के मामले को लेकर अमरकान्त पहले शांति से महन्त को मनाना चाहता है पर बात बनती नही। स्वामी आत्मानन्दजी नामक क्रांतिकारी की उग्र विचार-धारा से आन्दोलन मे तेज़ी आती है। हालत बराबर बिगड़ती जाती है। सलीम को चालाकी से अपने मित्र अमरकान्त को गिरफ्तार करना पड़ता है। उसका यह कार्य उसकी आत्मा के विरुद्ध था अतः पीछे पुलिस अफसर मिस्टर घोष से मुठभेड होने पर उसे भी नौकरी से इस्तीफा देना पड़ता है और अन्त मे विद्रोह में जेल जाना पड़ता है। अन्य सब पात्र भी जेल जाते है।

अन्त मे सब लोग छूट जाते है। सरकार पाँच आदमियो की एक कमेटी द्वारा लगान के झगड़े को तय करने की योजना बनाती है। सलीम और अमरकान्त दोनो चुने जाते है और बाकी तीन को चुनने की जिम्मेदारी भी उन्ही की रहती है। गवर्नर साहब की सहायता की प्रशंसा होती है।

अपने पहले राजनैतिक उपन्यासो की तरह 'कर्मभूमि' में भी प्रेमचन्द ने राजनीति से सम्बन्ध रखने वाली सभी समस्याओ को लिया है। मुख्य समस्या जमीन की है। नगर में वह मज़दूरों के मकान बनाने के लिये उठाई गई है तो गाँव मे किसानो को लगान से छूट दिलाने के लिये। यो दोनो ही क्षत्रो में किसान और मजदूर आन्दोलन की रीढ़ है। अछूतो के मन्दिर प्रवेश की तीसरी समस्या है, जो धार्मिक पाखण्ड और सामाजिक विषमता की ओर सकेत करती है। सन् ३०-३१ में चर्खा और खादी राज-

नैतिक आन्दोलन के प्रतीक थे। अमरकान्त गांधीवाद के झण्डे को उठाये उपन्यास मे आदि से अन्त तक उपस्थित रहता है। स्वामी आत्मानन्द के रूप मे आतकवादी भी इस उपन्यास में मौजूद है, जो इस बात का प्रतीक है कि प्रेमचन्द समझौता वादी सत्याग्रहियो मे जोश दिलाने के लिये आतकवाद की आवश्यकता समझते थे। सलीम और अमर की मैत्री हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की महत्ता बताती है और हमें अनुभव होता है कि दोनो के त्याग से ही समस्या हल हो सकती है। स्त्रियो में क्या रेणुका, क्या नैना, क्या सुखदा, क्या सकीना, क्या पठानिन सब आन्दोलन मे अपना-अपना पार्ट अदा करती है। मुन्नी का चरित्र प्रेमचन्द के बलिष्ठ नारी पात्रा की पूर्व परम्परा का विकास है। अपने सतीत्व-हरण का वह ऐसा बदला लेती है कि लोग आश्चर्य चकित रह जाते है। वह अपने पति द्वारा पुन: अपनाने का आश्वासन पाने पर भी नही लौटती और अमरकान्त के साथ कार्य करती है। यह प्रकट करता है कि भारतीय स्त्री मे सतीत्व की भावना बडी ऊँची है। समरकान्त के रूप में एक सूदखोर का ऐसा चित्रण है, जिससे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि अग्रेजी राज्य मे पूँजीपतियो की क्या अवस्था थी। उसके विपरीत सकीना के घर का चित्र है, जिस पर इतने कपडे भी नही कि जो पहने हुए कपडे [illegible] भीगन पर अपना तन भी ढक सके। अछूतो की दशा का जो चित्रण हुआ है, वह तो अत्यन्त ही मार्मिक है [illegible] ने लिखा है—"बेचारे एक तो गरीब, ऋण के [illegible] से दबे हुए, दूसरे मूर्ख, न कायदा जानें न कानून। [illegible] जी जितना चाहें इजाफा करें, किसी मे बोलने [illegible] न था। अक्सर खेतो का लगान इतना बढ गया था कि सारी उपज लगान के बराबर भी

न पहुँचती थी। किन्तु लोग भाग्य को रो कर, भूखे नगे कर, कुत्तो की मौत मर कर, खेत जोतते जाते थे।"। इस पता चलता है कि प्रेमचन्द की दृष्टि गाँवो के भीतर भी गहरी जा रही थी।

श्री नन्द दुलारे वाजपेयी ने इस उपन्यास के कथानक बारे मे लिखा है—"कर्म भूमि के कथानक के बारे मे प्रेमचन्द को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। सभी नेतागण स्वप्न को सत्य देखने के लिये उपन्यास के अन्त तक जीवित रहते हैं। हत्याओं की सख्या अन्य कृतियो की भाँति इस अधिक नही है।" (प्रेमचन्दः साहित्यिक विवेचन १०४) वस्तुत. इस मे प्रेमचन्द ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढग शहर और गॉव की कथा को अमरकान्त द्वारा जोड़ा है दोनो ही कथाये स्वाभाविक गति से आगे बढती हैं उन कथाओं की एक-एक घटना, एक-एक पात्र कार्य का परम्परा से आगे की ओर गतिवान होता है। राजनैतिक और सामाजिक उद्देश्य की सिद्धि के लिये हर एक स्वत प्रेरित होता है। अब तक उपन्यासो में ऐसा नही हुआ था। अन्त में समझौता होता है। यह गांधी जी का स्वप्न था। अपने समय की सभी समस्याओ को यह उपन्यास वडी सुन्दरता से प्रस्तुत करता है।

'गोदान' प्रेमचन्द का चौथा राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यास है। यह उपन्यास प्रेमचन्द के शेष सभी उपन्यासों से पृथक् कोटि का है। 'गोदान' से पहले प्रेमचन्द ने जो सामाजिक समस्या प्रधान या राजनतिक समस्या प्रधान उपन्यास लिखे वे सब आदर्शवादी थे। उन की समस्याओं का हल सुधारवादी था। सेवा-सदन और सेवाश्रम निर्माण करने की ओर ही प्रेमचन्द का ध्यान गया था और

सव जानते है कि ये सब गाधीवाद के प्रभाव क कारण था। 'गोदान' मे आ कर वे गाधीवाद के प्रभाव से मुक्त हो गये थे। सच तो यह है कि सन् २०–२१ और ३०–३१ के आन्दोलनो की विफलता ने उन्हे यह सोचने पर विवश कर दिया था कि गाधीवाद हमारी राजनैतिक और सामाजिक विपमता का कोई स्थायी हल नही दे सकता। इसीलिये 'गोदान' मे उन्होने परिस्थिति का यथातथ्य चित्रण कर के छोड दिया है। भारतीय किसान समाज और धर्म की झूठी रूढियो से किस प्रकार जकडा हुआ है और अपने अन्धविश्वासो के कारण किस प्रकार वह किसान से मजदूर होता हुआ भूखा-प्यासा दम तोड देता है, यही 'गोदान' का प्रतिपाद्य है।

अपने दूसरे उपन्यासो की भाँति प्रेमचन्द ने 'गोदान' मे भी दो कथाये रखी है—एक का सम्वन्ध होरी के परिवार से है और दूसरी का राय साहव अमरपालसिह तथा उन के मित्रो से। होरी की कथा ग्राम्य जीवन का रगीन चित्र प्रस्तुत करती है, जब कि राय साहव की कथा नगर के जीवन का एक रेखा-चित्र भर प्रस्तुत करती है। ये दोनो कथाये आपस मे जुडी है होरी के लडके गोबर के द्वारा, जो राय साहव के मित्र खन्ना की मिल मे मजदूरी करता है। दोनो कथाओ को एक साथ लेने का अर्थ है पूरे भारतीय जीवन का चित्र प्रस्तुत करना।

होरी एक साधारण किसान है, जिस के पास केवल ४-५ बीघे ज़मीन है। उस के परिवार मे उस की पत्नी धनियाँ, पुत्र गोबर और लडकियाँ सोना और रूपा है। सोना विवाह के योग्य है। हीरा और शोभा दो उस के भाई है, जिन को होरी न ही पाला-पोसा है। अब तीनो भाई अलग-अलग रहते है।

अपने ज़मीदार रायसाहिब अमरपालसिंह से मिलते जुलते रहने से होरी की प्रतिष्ठा बनी है। पुरानी मान-मर्यादा का उसे भारी मोह है। एक दिन वह रायसाहब से मिलने जाते हुए ग्वाला भोला से मिलता है। उस की पत्नी मर चुकी है। होरी उसे विवाह करा देने का आश्वासन देता है और साथ ही गाय की लालसा प्रकट कर देता है। भोला गाय देने को राज़ी हो जाता है पर होरी उसी समय गाय नही लाता। एक दिन भोला होरी के यहाँ आता है। धनियाँ, होरी और गोवर तीनो उस का स्वागत करते है। होरी और गोवर उस के यहाँ स्वय भुस डाल आते है और गाय ले आते है। इसी प्रसग मे भोला की जवान लडकी झुनियाँ से गोबर की आँखे चार होती है और दोनो एक दूसरे का हो जाने की प्रतिज्ञा कर लेते है।

गाय के आने की सब को प्रसन्नता है। लड़कियाँ तो फूली नही समाती। आसाढ के दिन थे। खेतो की बुवाई का वक्त था। पहला पानी पड चुका था। जमीदार के कारिन्दे ने कह दिया वाकी चुकाओ और खेत जोतो। होरी घबराया। गाय गिरवी रखने का प्रश्न उठा। झींगुरीसिंह गिरवी रखने को तैयार भी हो गया पर घर वाले न माने। हार कर उस ने दमडी बँसोर को बाँस बेच दिये। जब बाँस काटे जा रहे थे तो हीरा की बहु पुनियाँ के विरोध से भारी झगड़ा हुआ, जो जैसे-तैसे शान्त हुआ।

गाय देखने को सारा गाँव टूट पडा लेकिन हीरा पुनियाँ न आये। रात को होरी अपने भाई शोभा को, जो बहुत दिन से वीमार था, देख कर लौट रहा था।

ग्यारह बजे थे । उस ने हीरा को गाय के पास खडे देखा । वह विष देने आया था । होरी प्रसन्न था कि भाई आया तो सही भले ही रात को ही आया । लेकिन थोड़ी देर बाद गाय तडपने लगी और सुबह तक चल बसी । होरी ने हीरा के रात को गाय के पास खडे होने की बात धनियाँ से कही तो सब को विश्वास हो गया कि गाय को हीरा ने ही विष दिया है ।

हीरा घर से भाग गया । उस के बाद थानेदार आया । हीरा के घर की तलाशी लेने की बात हुई । होरी अड गया । उस के भाई की तलाशी के मानी उसका अपमान था। पटेश्वरी पटवारी ने तीस रुपये कर्ज स्वरूप होरी को दिये ताकि थानेदार का मुँह बन्द कर वह पीछा छुडाये । धनियाँ को पता चला तो सिहनी-सी गरजी और रुपये सब के सामने फेंक दिये । सब लोग उस से हार गये । थानेदार मुखिया और पटवारी से पचास रुपये ले कर चला गया । हीरा की अनुपस्थिति मे उस के खेतो को जोत-बो कर अपने धर्म का पालन किया ।

इधर गोबर और झुनियाँ के प्रेम का परिणाम यह हुआ कि गोबर तो लखनऊ भाग गया और पाँच महीने का गर्भ लिये झुनियाँ होरी के घर आ खडी हुई । गाँव में प० दातादीन के लडके मातादीन ने सिलिया चमारिन रख छोडी थी तो होरी को झुनियाँ के रखने में क्या आपत्ति होती । उस ने हिम्मत कर उसे रख लिया । लेकिन गाँव वालो ने इस सामाजिक विद्रोह के लिये होरी को सौ रुपये नकद और तीन मन अनाज दण्ड स्वरूप देने को बाध्य किया । परिणाम स्वरूप होरी किसान से मजदूर हो गया ।

गोबर लखनऊ मे पद्रह रुपये का नौकर हो गया । होरी

ने दातादीन के साथ आध-बटाई पर खेत जोते और ईख बोई। हालत तो बुरी थी ही। भोला भी गाय के रुपये माँगने लगा। रुपये के बदले बैलो की जोड़ी ले गया। ईख की फसल अच्छी थी। उसको बेचा तो एक सौ बीस मिले। लेकिन उसमे स पच्चीस नोखेराम ने ले लिये और बाकी झीगुरीसिह ने। यो होरी इस बार भी खाली हाथ रह गया।

अब होरी पूरी तरह दातादीन का नौकर था। सोना व्याह के योग्य थी। क्या करे ? बेचारा बीमार पडा। तभी शहर से आया गोबर। आकर उसने गाँव वालो पर रोब जमाया और सब कर्ज चुका दिया। बैलो की जोडी भी घर आगई। गोबर ने चाहा कि पिता सरलता छोडे पर सस्कार कभी छूटते नही। गोबर बेचारा हार कर फिर लौट गया। होरी ने जैसे-तैसे सोना का विवाह किया और ककड ढोने का काम करने लगा। गोबर सोना के विवाह मे नही आया पर रूपा के मे आया। उसने पिता को ही अपनी स्थिति के लिये दोषी ठहराया। होरी अपने आप को दोष देकर रह गया। अन्त मे एक दिन सडक पर ही लम्बा हो गया और सुतली बेचकर प्राप्त किये गये बीस आने पैसो से उसका गोदान हुआ।

यह प्रमुख कथा है। इस के साथ चलती है रायसाहब और उनके मित्रो की कथा। रायसाहब अमरपालसिह के मित्रो मे सभी तरह के लोग है। मिस्टर खन्ना है, जो बैक के मैनेजर है और मिल मालिक है। तखा है, जो बीमा कम्पनी के एजेंट है। पडित ओकारनाथ है, जो 'बिजली' पत्र के सम्पादक है। मिस्टर मेहता है, जो प्रोफेसर है। मिर्जा साहब है, जो जूतों की दूकान करते है। सब नगर के है।

रायसाहव इन्ही के वीच अपना जीवन विताते है। गाँव में राम लीला के अवमर पर धनुपयज्ञ मे सव एक दूसरे से परिचित होते है। मिस्टर मेहता पठान के वेश में अचानक गाँव वालो द्वारा अपने एक हजार रुपये छीने जाने का अभियोग लगाते हुए वीच में आते हैं। लोग सव घबराते है पर होरी उस पठान को उठाकर दे मारता है और पता चलता है कि यह तो मेहता साहव हैं। अच्छा तमाशा रहता है। उसी उत्सव मे मिस मालती लेडी डाक्टर दिखती है, जो सव को अपनी आधुनिकता से रिझा लेती है। दूमरी वार शिकार की यात्रा में य लोग फिर मिलते हैं। इस मे मेहता और मालती निकट आते हैं।

मिर्जासाहव मजेदार आदमी है। कुछ न कुछ तमाशा खडा करते ही रहते है। एक दिन मजदूरो की कवड्डो ही रख दी, जिसमें रायमाहव, मेहता, खन्ना, मालत। आदि सव आते है। गोवर को मिर्जा ने नौकर रख छोडा है। ऐसे ही ओंकार नाथ है जो पत्रकार कला को कमाई का साधन बनाये हुए हैं। वे रुपये लेकर अमीरो के भाट वने रहते है। मिस्टर खन्ना की मिल मे एक वार हडताल होती है। पुराने और नये मजदूरो मे झगडा होता है। मिल में आग लगती है। दस लाख का नुकसान होता है। गोवर मिर्जा के यहाँ से हट कर इस मिल मे मजदूर की हैसियत से काम करता है। मिस्टर तखा सव ओर से रुपये बनाते है। खन्ना से भी और रायसाहव से भी।

एक वार मेहता का व्याख्यान होता है, जिसमे भारतीय स्त्रियो को पश्चिमी विचारो से दूर रह कर केवल अपने ही आदर्शो पर चलने का समर्थन होता है। मालती पर इसकी प्रतिक्रिया होती है। वह मेहता के और निकट आती है।

दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर मेहता अब उसकी ओर विशेष रूप में झुकते है। दोनो गाँवो में सेवा कर्म करने जाते हैं। उनका विवाह नही हो पाता। वे मित्र के रूप मे ही रहने का निश्चय करते है।

रायसाहब के बडे लडके रुद्रपालसिह का विवाह राजा सूर्य प्रतापसिह अपनी पुत्री से करना चाहते है पर वह मालती की वहन सरोज पर मुग्ध है। रायसाहब को इससे निराशा होती है। उपन्यास का अन्त कुरूप है। होरी की मृत्यु से समाप्त होने वाले इस उपन्यास में उच्चवर्ग के प्रतिनिधि ज़मीदार अमरपालसिह की भी मृत्यु की सूचना है और मिल मालिक खन्ना के भी पतन की ओर सकेत है। शिक्षितवर्ग मे पाश्चात्य फैशन के पीछे पागल नारियो और दार्शनिको की मुक्ति जनसेवा मे ही मानी गई है, यह भी उनके ऐयाश जीवन की समाप्ति की सूचना ही है। इस प्रकार पूर्ण उपन्यास जर्जर सामती समाज के भीतर होने वाले परिवर्तन का सूचक है। प्रेमचन्द ने उपन्यास मे आदर्श-वाद का चोगा उतार कर यथार्थ को ही सामने रखा है। गाँव का किसान जिस झूठी मान-मर्यादा के कारण कर्ज और गरीबी के वोझ से दबा है उसकी रगीन तस्वीर 'गोदान' मे है। बेचने की फसल जब भी तैयार होती है, उसे या तो ज़मीदार के कारिन्दे ले जाते है या गाँव वाले। एक गाय रखने की छोटी-सी लालसा भी उसकी पूरी नही होने पाती। यह गाय स्थूल रूप से उसकी धार्मिक भावना को व्यक्त भले ही करती हो प्रतीक रूप से उसकी पवित्रता और सचाई की ओर भी संकेत करती है। गाँव के भीतर का खोखलापन, परिवार की कलह, पटवारी, महाजन, पुलिस, कारिन्दा आदि की लूट सब कुछ 'गोदान' में दिखाया गया है और अपने नगे रूप में। किसान का घर द्वार तक बिक जाता है पर न

मान-मर्यादा रहती है न पेट भरता है। हारकर मज़दूर बनना पड़ता है। उसकी संतान गोबर तो मिल में मज़दूर हो ही जाता है। गाँव के किसान ही सर्वहारा होकर मज़दूर बन जाते है, यह गोदान का प्रति-पाद्य माना जा सकता है। मज़दूर क्रांति की ओर प्रेमचद बढ रहे थे, ऐसा आभास हमें गोदान की कथा से होता है।

रायसाहब जैसे लोग दोनो ओर मिले रहते है। उनके कारिन्दे किसान को लूटते है और वे ऊपरी सहानुभूति से किसानो के देवता बने रहते है। हित उनके शहर के बैंक मालिको और मिल मालिको मे जुडे है। वे राष्ट्र-सेवा का भी ढोंग रचते है और सरकार से भी मिले रहते है। प्रेमचन्द के शब्दो मे—"रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाये रखते थे। उनकी नजरें और डालियाँ और कर्मचारियो की दस्तूरियाँ जैसी की-तैसी चली आती थी।" ये लोग टट्टी की ओट में शिकार खेलने वाले है। उनके साथी भी सब ऐसे ही है। खन्ना को ही लीजिए वे "दो बार जेल हो आये थे। किसी से दबना न जानते थे। खद्दर पहनते थे और फ्रांस की शराब पीते थे।" मिर्ज़ा के खेल-तमाशे, तखा की दलाली सब शोषण पर ही टिके है।

मेहता और मालती के चरित्र मे प्रेमचद ने आधुनिक शिक्षित वर्ग को जनसेवा की ओर मोडा है। यह जैसे हमारी शिक्षा का सबसे बडा ध्येय हो। प्रेम का रूप यहाँ भी आध्यात्मिक है। अशरीरी प्रेम की ओर प्रेमचंद की रुचि का प्रतीक है। वैसे स्त्री पात्रो मे धनियाँ सब से प्रबल है। वह विद्रोहिनी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह पति ही नही पुलिस के सामने भी अकड कर खडी हो जाती

है । झुनियाँ और गोबर तथा मातादीन और सिलिया के जोडे बताते है कि जातिवाद प्रेम के प्रवाह मे ठहरने वाला नही है । होरी की विशेषता यह है कि वह प्राचीन मर्यादा से बँधा होने पर भी अहीरिन-झुनियाँ को पुत्र-वधू के रूप मे और चमारिन सिलिया को आश्रिता के रूप में स्थान देता है । गोबर का दर्प मानो किसान की नई पीढी का दर्प है, जो समस्त सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देता है । उस का बाप अन्त तक लड़ा है तो वह भी हारेगा नही । अक्सर यह कहा जाता है कि 'होरी' प्रेमचद का ही रूप है पर डाक्टर रामविलास शर्मा का यह कथन इस से कही अधिक उपयुक्त है कि मेहता से होरी को जोड़ा जा सके तो जो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत कुछ प्रेमचद से मिलता-जुलता होगा । (प्रेमचद और उन का युग पृष्ठ १८९)

'गोदान' आधुनिक युग का सर्व श्रेष्ठ उपन्यास है । पद्य मे 'कामायनी' और गद्य मे 'गोदान' वर्तमान हिन्दी साहित्य के दो छोर है—एक मे आनन्द-वाद की प्रतिष्ठा है और दूसरे मे यथार्थ जीवन की विभीषिका, एक में कल्पना के स्वर्ग और रहस्यमय लोक की झाँकी है तो दूसरे मे हमारे दैनिक जीवन की घृणित और मटमैली तसवीर है । ये दोनों इसीलिये प्रतिनिधि रचनाएँ है जैसे एक दूसरे की पूरक हो । कला की दृष्टि से प्रसाद का चरम विकास कामायनी मे है तो प्रेमचद का गोदान मे ।

'मगलसूत्र' प्रेमचन्द का अतिम राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यास है । अभी इस के चार ही परिच्छेद लिखे गये थे कि प्रेमचन्द चल बसे । इन चार परिच्छेदो मे कथा का जो तानावाना बुना गया है वह मध्यवर्गीय समाज को ही लेकर

चला है और सामाजिक स्थिति से ही उस का सबंध है लेकिन गोदान के बाद प्रेमचन्द जो कुछ लिखते उस का मज़दूर जाति से सबंध न होता यह सभव नही था। दूसरे जो सामाजिक विशृखलता और खोखलापन हमारे जीवन को खाये जा रहा है वह भी राजनीति से सबंध रखता है, उसी के द्वारा उस की लगाम कडी या ढीली की जाती है। अतएव हम ने जान बूझ कर 'मगलसूत्र' को राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यासो मे रखा है।

इस की कथा का विकास नही हुआ क्योकि उपन्यास अधूरा है। पर जितना है उससे इसके पात्रो का एक रूप खडा हो जाता है। इसका नायक देवकुमार है, जो एक ख्याति प्राप्त लेखक है। उसने अपना समस्त जीवन साहित्य सेवा मे लगा दिया है पर उसे यश भर मिला है, धन नही। साथ ही अपने पूर्वजो की सम्पत्ति भी खा गया है। उसके दो लडके है पहला सन्तकुमार जो वकील है और धूर्त तथा स्वेच्छाचारी है। अपने बाप से लडने में भी उसे शर्म नही आती। दूसरा साधुकुमार है जो आदर्श-वादी और बाप के चरण चिह्नो पर चलने के लिये लालायित है। वह दो बार जेल भी हो आया है। एक लडकी पकजा है, जिस की शादी हो चुकी है। पत्नी का नाम शैव्या है, जो पति के मर्यादा पालन मे साथ देती है और सन्तकुमार की स्वार्थपरता को पसद नही करती। पुष्पा सन्तकुमार की पत्नी है, जो स्त्री के अधिकारो और सम्मान की समर्थक है। देवकुमार के परिवार के ये पात्र जैसे प्रेमचन्द के ही परिवार के पात्र हो। कुछ लोगो का तो इसीलिये कहना भी है कि इस में प्रेमचन्द अपनी ही कहानी लिख रहे थे। वास्तव में प्रेमचन्द के परिवार के पात्रो से 'मगल सूत्र' के देवकुमार के पात्रो का हू-ब-हू मेल

बैठ जाता है। अन्य पात्रो मे एक है मि० सिन्हा, जो सन्तकुमार का मित्र है और वैसा ही धूर्त तथा स्वार्थी है। वह भी वकील है। दूसरे एक महाशय गिरधरदास है, जो नये जमाने के आदमी भी है और शेयर का धधा करते है। तीसरी एक देवी जी है तिव्वी, जिन का असली नाम त्रिवेणी है। एक सब जज की लडकी है। वेश-भूषा मे तितली और उथले ज्ञान को विद्वत्ता का रूप देने मे पटु। घूरे उस का नौकर है, जो बराबर तिव्वी के अनुचित व्यवहार और डॉट-फटकार का शिकार होता रहता है।

देवकुमार होरी के ही प्रतिरूप जान पडते है। एक आदर्श के लिय मिटने वाले कलाकार के नाते वे जीवन भर कार्य करते है और उन्हे मिलता कुछ नही। प्रेमचन्द के शब्दो मे—"साहित्य सेवा के सिवा उन्हे और किसी काम में रुचि न हुई और यहाँ धन कहाँ ? हाँ, यश मिला। उन के आत्म संतोष के लिये इतना ही काफी था।" परन्तु देवकुमार इस आत्मसतोष से असंतुष्ट हो कर गिरधरदास महाजन के यहाँ अपनी दो लाख की जायदाद को बीस हजार म चले जाने देने को तैयार नही प्रत्युत् उसे यनकेन प्रकारण छुड़ा लेना चाहते है। होरी ऐसा कभी नही कर सकता था। वह तो महाजनो के बीच फँसा का फँसा रह गया, निकलन की बात उस ने सोची ही नही। वह सोच ही नही सकता था। उस का धर्म उस मे बाधक था। देवकुमार दुष्टता का वदला दुष्टता से देने की सोचते है। यह प्रगति की ओर उन के बढते हुए कदम का सबूत है। उन का लड़का सन्तकुमार प्रेमाश्रम के ज्ञानशकर का ही परिवर्तित रूप है। ज्ञानशकर अपनी पत्नी विद्या को तग कर के गायत्री के साथ प्रणयलीला करता है तो सन्तकुमार अपनी पत्नी पुष्पा को बाप से अधिक रुपये लाने

के लिये परेशान कर के तिव्वी के साथ प्रेमालाप करता है । तिव्वी 'गोदान' की मालती का ही आरभिक रूप है जो कहती है 'मै विवाह को प्रेम-वधन के रूप मे ही देख सकती हूँ, धर्म-वधन या रिवाज-बधन तो मेरे लिये असह्य हो जायेगा ।" प्रेमचद के प्रेम और विवाह-सवधी विचारो का हम उस के कथन से परिचय पाते है । आगे चल कर उस का रूप मालती की तरह अवश्य मर्यादित होता है । गिरधरदास 'गोदान' के चन्द्रप्रकाश खन्ना की भाँति उद्योगपति-वर्ग का प्रतिनिधि है । उस के पास भी एक मिल है । वह खुले दिमाग का है । रूढिवाद को पसद नही करता । पण्डे-पुजारियो को दान देने के विरोध मे उस ने एक पुस्तक भी लिखी है । वास्तव मे वह पढा-लिखा पूँजीवादी है । साहित्य-प्रेम का भी दम भरता है । पर जैसे ही देवकुमार समझौता कर के अपनी जायदाद वापस लेने का प्रस्ताव रखते है वह तन जाता है और उस का असली रूप प्रगट हो जाता है । श्री हसराज रहवर ने साधकुमार के बारे मे कल्पना की है--"हम कह सकते है कि साधुकुमार जो स्वतत्र और सुगठित नौजवान है, जो क्रिकेट का प्रथम श्रेणी का खिलाडी और दो बार जेल काट आया है, आगे चल कर गिरधरदास के मिल के मजदूरो का सगठन करेगा और शोषण के विरुद्ध उन के सघर्ष का और हडतालो का नेतृत्व करेगा । तिव्वी भी इस आन्दोलन मे भाग लेगी । सनकुमार का स्वाग और दुष्टता बहुत दिनो तक छिपी न रहेगी । और वह सच्चा प्रेम साधुकुमार से पायेगी ।" (प्रेमचद और गोर्की पृष्ठ ३४३) यह कल्पना पेमचद के सुविचारित कथा-सगठन के अनुकूल जान पडती है । हो सकता है कि किसी और रूप मे वह आगे बढती । परन्तु यह निश्चित है कि प्रेमचद मजदूरो की क्राति का झण्डा इस में बुलन्द अवश्य

करते। 'गोदान' में कृषक को श्रमिक होते दिखाया था तो 'मगलसूत्र' मे उस श्रमिक की मुक्ति का उपाय वे अवश्य खोजते। कला की दृष्टि से भी यह उपन्यास बड़ा सुगठित होता, यह निर्विवाद है। समाज और राजनीति दोनो यहाँ एक होकर आती, यह तो सत्य है ही।

प्रेमचद के उपन्यासो की यह रूप रेखा है। इसके द्वारा प्रेमचद की दृष्टि की व्यापकता, समाज और राजनीति के विभिन्न पहलुओ पर उनके विचार, हमारे व्यक्तिगत जीवन की विकृति और उस से मुक्ति की दिशा, आवारा और समाज-बहिष्कृत पात्रो से लेकर राजा-महाराजाओ तक के जीवन के सजीव चित्र, ग्राम्यजीवन के प्रति उनकी सहानुभूति और देश-विदेश के परिवर्तनो के प्रकाश में अपने देश के उद्धार की योजना, भारतीयता के आदर्श के शुद्ध रूप की कल्पना, युगानुकूल परिस्थितियो के आधार पर नये जीवन का निर्माण आदि का बडा ही सुन्दर समावेश इन उपन्यासो मे हुआ है और दो महायुद्धो के बीच के भारत का सही इतिहास जानने के लिये उनके उपन्यासो से अधिक प्रामाणिक लेखा कही और नही मिलेगा।

प्रेमचन्द की कहानियाँ

प्रेमचद ने उपन्यास के क्षेत्र मे जैसा महत्वपूर्ण कार्य किया वैसा ही कहानी के क्षेत्र में भी किया। हिंदी मे उनके आलोचको के दो दलो मे से यदि एक के मत मे वे उपन्यासकार के रूप मे वढे-चढे ह तो दूसरे के मत मे कहानीकार के रूप में, तो इसका कारण यही है कि उन्होने दोनो ही साहित्यिक धाराओ मे अभिनव प्रयोग किये है। उनके उपन्यासकार-रूप पर जो दोप लगाया जाता है वह यह कि अपने वडे उपन्यासो मे उन्होने दो समानान्तर कथाओ को मिला दिया है, जिससे कथा की गति, पात्रो के जीवन का विकास और उद्देश्य की एकता को सम्भालना मुश्किल हो गया है। कहानियो म ऐसा नही हुआ है और उनका कलात्मक सौदर्य अपेक्षाकृत अधिक है। इतना होने पर भी वे उपन्यासकार के नाते जो सम्मान पाते है वह कहानीकार के नात नही। इसका एकमात्र कारण यह है कि वे उपन्यासो में समग्र भारतीय जीवन की गतिविधि का चित्र देने के लिये खुला अवकाश पाते थे। डाक्टर रामविलास शर्मा के शब्दो मे—"उपन्यास पढना और एक बडे पैमाने पर कहानी सोचना उनके सस्कारो मे शामिल हो गया था। उपन्यासो में उन्हें रस आता था। यहाँ उनकी कल्पना आकाश मे मुक्त विहग जैसी अपने पख फैलाकर उड सकती थी। कहानी की परिधि उन्ह अपनी प्रतिभा का पूरा करतब दिखाने से रोकती थी।" (प्रेमचन्द और उनका युग)

लेकिन इतना होने पर भी उनमे उच्चकोटि के कहानीकार के जो गुण पाये जाते है उनको कसौटी कस करके देखना अनुचित है। उनके समान अधिक सख्या मे कहानियाँ लिखने वाला और वह भी उच्चकोटि की कोई दूसरा उपन्यासकार नही हुआ। उन्होने एक दर्जन के लगभग उपन्यासो के साथ लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी। विषय-वैविध्य और शिल्प की दृष्टि से इन कहानियो के इतने भेदोपभेद हो सकते है कि उसी के लिये एक अलग पुस्तक अपेक्षित होगी। डाक्टर सत्येन्द्र ने अपनी 'प्रेमचन्द उनकी कहानी कला" नामक पुस्तक में पृष्ठ ६२ पर केवल २०० कहानियो का वर्गीकरण किया है। उन्होने उनकी कहानियो के दो मुख्य वर्ग माने है—१—स्त्री-पुरुष से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ और २—ससार मे व्यस्त मानव से सम्बन्धित कहानियाँ। पहले वर्ग मे उन्होने १—प्रेम सम्बन्धी, २—विवाह सम्बन्धी, ३—वेश्या सम्बन्धी, ४—सतीत्व सम्बन्धी, ५—पुरुष को जीतने वाली स्त्री सबधी, ६—स्त्री को जीतने वाले पुरुष-सबधी, ७—स्त्री को खोने वाले पुरुष सबधी, ८—स्त्री और पुरुष के जीवन-सम्बन्धी, ९—पुरुष से प्रबल स्त्री और १०—रसिकता सबधी, इन दस प्रकार की कहानियो को लिया है। इनमे भी प्रेम-सबधी और विवाह-सबंधी मे से प्रत्येक के क्रमशः चौंतीस और चार भेद किये है। दूसरे वर्ग वाली कहानियो को उन्होने—१—दैव और आत्मा सबधी,—२—धर्म-संबधी, ३—पद अधिकार सबंधी, ४—समाज-सबधी, ५—राज-नीति-सबधी, ६—घर-सबधी, ७—साम्प्रदायिक ८—कृपक-संबधी, ९—नैतिकता-सबधी १०—नाग-रिकता-सबधी, ११—सभ्यता-सबधी, १२—राज्य-सम्बन्धी १३—दरिद्र पर अत्याचार, १४—जाति सेवक १५—आभू-

षण प्रेमी पत्नी, १६—मद्यनिषेध, १७—रसिक, १८—मातृत्व १९—मित्र, २०—सम्पत्ति-सम्बन्धी २१—पशु-सबधी, २२—स्वभूमि प्रेम, २३—मनुष्य के आदर्श, २४—टायप चरित्र वाली और २५—व्यापार-सम्बन्धी इन २५ प्रकारो ये बांटा है। इन मे से भी कई के दस तक उपभेद है।

जहाँ तक वर्गीकरण का सम्बन्ध है 'भाव भेद रस भेद अपारा' की भान्ति वृत्तियो के आधार पर अनेक प्रकार से इन कहानियो को बांटा जा सकता है। हम यहां इतने सूक्ष्म भेदोपभेदो के चक्कर मे नही पडेगे। समाज के सभी वर्गों और उसके आधार स्त्री, पुरुष और बालको से लेकर पशु-पक्षियो तक प्रेमचन्द न अपनी कहानियो के पट का जो विस्तार किया है उसे हम अपने उपन्यास-विभाजन की भाँति सामाजिक और राजनैतिक दो ही भागो मे बांटना चाहते है। सामाजिक कहानियो में स्त्री-पुरुष के प्रेम और जीवन व्यापार की अन्य दशाओ में फँसे मानव की उन कहानियो का समावेश हो जाता है, जिनमें जीवन की किन्ही शाश्वत प्रवृत्तियो को आधार बनाया गया है। राजनीति-सम्बन्धी कहानियो मे राजनीति के आन्दोलन और कृषक-मजदूरो के उत्पीडन और शोषण-सम्बन्धी कहानियो को रख सकते है। एक तीसरा वर्ग उनकी कहानियो का और होगा, जो उपन्यासो मे नही है। वह वर्ग है ऐतिहासक कहानियो का। यह वर्ग हमें इसलिये रखना पडेगा कि इन कहा-नियोमे प्रेमचन्द ने मध्यकालीन इतिहास से कथानक चुन कर वीरता के आदर्श और सामन्तकालीन ह्रास के नग्न चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किये है। इस प्रकार मोटे तौर पर उनकी कहानियो के तीन वर्ग हुए—१—सामाजिक कहानियाँ, २—राजनैतिक कहानियाँ और ३—ऐतिहासिक कहानियाँ। एक बात और। प्रत्येक वर्ग की कहानियो को

एक-एक कर लेना स्थान और समय के अभाव के कारण सभव नही है अत हम सामूहिक रूप से प्रत्येक वर्ग मे से कुछ कहानियो के द्वारा ही उस वर्ग के अन्तर्गत आने वाली कहानियो की विशेषताओ का उद्घाटन करने का प्रयत्न करेंगे ।

सामाजिक कहानियाँ

प्रेमचद ने सामाजिक कहानियाँ ही विशेष रूप से लिखी है । जैसा कि हम डाक्टर सत्येन्द्र के वर्गीकरण के सिलसिले में सकेत कर चुके है समाज, परिवार और उस की इकाई व्यक्ति की ऐसी कोई समस्या नही जिस पर प्रेमचद ने विचार न किया हो । इन कहानियो मे शहर और गाँव दोनो के जीवन के चित्र है । साथ ही मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के पात्र ही विशेष रूप से आये है । उन की प्रसिद्ध सामाजिक-कहानियो मे 'वडे घर की बेटी', 'पच-परमेश्वर', 'शंखनाद', 'अमावस्या की रात्रि', 'शान्ति', 'कायर', 'अलग्योझा', 'भक्ति का मार्ग', 'माता का हृदय', 'नशा', 'बड़े भाई साहब', 'बूढी काकी', 'घर जमाई' आदि का विद्वानो ने वार-बार उल्लेख किया है। 'वडे घर की वेटी' की समस्या पारिवारिक है । इसी मे क्या प्रेमचद की अधिकाश सामाजिक कहानियो मे परिवार ही आधार के रूप मे प्रस्तुत किया गया है । 'वडे घर की बेटी', मे श्रीकण्ठसिह, आनदी और लालविहारी तीन पात्र है । झगडा आनदी के देवर लालविहारी के कारण खडा होता है । वह यो कि शिकार में मारी हुई दो चिडियो मे आनदी, जो बड़े घर की बेटी है, सब घी लगा देती है और दाल के लिये घी नही बचता । लालविहारी विगड खड़ा होता है । दोनो ओर से कहा सुनी होती है । बात वढ जाती है ।

आनदी अपने बडे घर की होने पर अभिमान भी करती है और नौबत अलग होने की आ जाती है । बेचारा श्रीकण्ठसिंह और क्या करता ? अन्त मे आनदी ही स्थिति को सभाल कर दोनो भाइयो को एक करती है। लोग उसकी प्रशसा करते हैं कि बडे घर की बेटियाँ ऐसी ही होती हैं । 'पच परमेश्वर' मे दो मित्रो की कथा के द्वारा यह बताया गया है कि न्याय के आसन पर बैठ कर कोई पक्षपात नही करता । पहली बार अलगू को जुम्मन शेख और उस की बेवा चाची के झगडे का फैसला करना पडता है । झगडा इस बात का है कि जुम्मन ने उस के गुज़ारे का जिम्मा लिया था और अब जब कि सारी जमा-पूंजी चुक गई है तो वह पीछे हट रहा है । पचायत मे बुढिया की पुकार सुनी जाती है । पच बनते हैं अलगू चौधरी । उन का निर्णय होता है कि बुढिया को गुजारा दिलाया जाये । कुछ दिन बाद अलगू चौधरी की बैलो की जोडी मे से एक बैल मर जाता है, जिस के लिये शक किया जाता है कि जुम्मन ने विष दे कर मार दिया है । बेचारे अलगू एक बैल को क्या करें ? उसे समझूसाहु के हाथ बेच देते हैं । समझूसाहु बैल को बुरी तरह जोतते हैं । नतीजा यह होता है कि बैल मर जाता है और एक महीने में दाम चुकाने का जो वादा समझूसाहु ने किया था वह पूरा नही हो पाता । इस का झगडा भी पचायत से तय होता है और अब की बार पच बनते हैं जुम्मन शेख । अलगू को डर होता है कि शत्रुता निकाली जायेगी पर फैसला होता है कि समझूसाहु के कठिन परिश्रम लेने और दाने चारे का ठीक प्रबध न करने के कारण बैल मरा है अत वे अलगू को बैल की कीमत दें । लोग न्याय की प्रशसा करते है और कहते हैं कि पच के मुख से परमेश्वर बोलता है । वह कभी अन्याय

नही कर सकता । 'शखनाद' कहानी मे तीन भाइयो की कहानी है । वे है गाँव के मुखिया भानु चौधरी के तीन लडके वितान, शान और गुमान । पहले दो काम काजी और तीसरा मस्त आवारा । भाई और भाभियाँ सब उसे व्यगवाणो से छेदती है । उस की पत्नी को घर का सब धधा पीटना पडता है । हार कर वह अलग हो जाता है । एक दिन एक खोमचे वाला आता है । वितान और शान के लडके उस से मिठाई ले कर खाते है पर गुमान का लड़का धान कुछ नही ले पाता । रोता-चीखता अपनी माँ के पास जाता है तो थप्पड ही पाता है । गुमान यह सब देखता है और कोई काम करने का निश्चय करता है । 'अमावस्या की रात्रि' मे धनाभाव के कारण बिना इलाज मर जाने वाले व्यक्तियो की दुर्दशा की ओर सकेत किया गया है । पडित देवदत्त की पत्नी गिरिजा बीमार है । कस्बे मे वैद्य है पर वह बिना पैसे आते नही । दीवाली की रात को गिरिजा की हालत ज्यादा खराब होती है । उसी समय एक युवक देवदत्त को पचहत्तर हज़ार रुपया देने आता है । यह रुपया वह है जिसे युवक के बाबा ने पडित देवदत्त के पिता से ऋण रूप मे लिया था । रुपया पच्चीस हज़ार ही लिया था पर वह अब ब्याज मिला कर पचहत्तर हजार हो गया था । उधर पडित जी कागज़ दिखा कर युवक को ऋण लेने की बात का प्रमाण दे रहे थे इधर उस की पत्नी मर गई । घोर दुख से भरे वे पचहत्तर हज़ार के नोट ले कर वैद्य के पास जाते है और कहते है कि आप उन्हे होश मे ला दीजिए । वैद्य जी आते है और जब गिरिजा की लाश देखते है तो उन की लज्जा का ठिकाना नही रहता । वे निश्चय करते है कि भविष्य मे, अपनी इस भूल को कभी नही दुहरायेगे । 'शान्ति' मे एक ऐसी भावना है,

जो हमारे समाज मे व्याप्त हो कर घरो को खोखला बना रही है । वह भावना है पाश्चात्य सभ्यता की । एक सीधी-सादी पुराने विचारो की महिला शान्ति अग्रेजी पढे लिखे पति के यहाँ विवाहित हो कर आती है । पति देव चाहते है कि वह फेशनेबुल तितली बने । शान्ति वैसा ही करती है । टैनिस, क्लब, मित्रो से मेलजोल शान्ति का दैनिक कार्य क्रम हो जाता है । पतिदेव की ओर उस का ध्यान नही जाता । वे बीमार पड़ते है और शान्ति उन की सेवा करती है पर समय कम मिलता है । मरते-मरते उन्हे शान्ति का वही पुराना रूप अच्छा लगने लगता है । 'कायर' कहानी मे प्रेमा नाम की एक लडकी अपने सहपाठी केशव से प्रेम करती है । दोनो भिन्न जाति के है । प्रेमा केशव की होने के लिये दृढ सकल्प करती है और माता-पिता को राजी कर लेती है पर केशव अपने पिता की फटकार पाकर अडिग नही रह सकता । वह शादी करने से इकार कर देता है और प्रेमा उस के कायरतापूर्ण व्यवहार से चोट खाकर मर जाती है । 'अलग्योझा' कहानी पारिवारिक मेल की कहानी है । भोला महतो ने दूसरा ब्याह किया है । पत्नी का नाम पन्ना है । भोला की पहली पत्नी से जो लडका है उस का नाम है रग्घू । नई माँ के दुर्व्यवहार पर भी रग्घू उस के लडको को प्यार करता है । लेकिन जब उस का व्याह हो जाता है तो उस की पत्नी मुलिया अलग रहने का निश्चय करती है । दैवयोग से बेचारा रग्घू चल बसता है । अब पन्ना का बडा लडका केदार मुलिया की देख-भाल करने लगता है । माँ व्याह की बात कहती है तो टाल देता है । वह मुलिया की ओर आकृष्ट है । अन्त में मुलिया को ही वह अपनी पत्नी बनाता है और' यो अलग हुए प्राणी फिर मिल जाते है ।

'मुक्ति का मार्ग' का क्षेत्र भी गाँव है और इसमे गाँवो के घृणित द्वेपभाव का कुपरिणाम दिखाया है। झीगुर गाँव का किसान है। जिसके खेतो मे अच्छी फसल हुई है। बुद्धू गड़रिया भी अपने मे खाता पीता है। उस पर भेड भी खूब है। एक दिन उसकी भेडें झीगुर के खेत की मेंड से जाती है और हरे-भरे खेतो मे मुँह भी मारने लगती है। झीगुर डडा लेकर भेडो पर पिल पडता है। गाँव मे अशान्ति के बादल छा जाते है। रात को बुद्धू झीगुर के खेत मे आग लगा देता है। झीगुर को असलियत का पता लग जाता है और वह बदला लेने की ठान लेता है। हरिहर चमार से सलाह कर ऊपर-ऊपर से बुद्धू से मेल रखता है और अपनी बछिया बुद्धू की भेडो मे चराने के बहाने बाँध देता है। एक दिन बछिया को स्वय विप देता है और वह मर जाती है। प्रायश्चित्त मे बुद्धू को तीर्थ यात्रा करनी पड़ती है। वह भी भीख माँगकर। पाँच सौ ब्राह्मणो को अलग से खिलाना पडता है। दोनो तबाह होकर मज़दूरी करने लगते है। 'माता का हृदय' की नायिका माधवी का पति मर चुका है। उसका एक लड़का है, जो राजनैतिक आन्दोलन मे जल चला गया है। मिस्टर बागची को माधवी अपने पुत्र को अकारण दण्ड देने का अपराधी मानती है और बदला लेने के लिये उनके घर नौकरी कर लेती है। आशय यह है कि उनके लडक को मार कर बदला ले ले। वह उनके बच्चे की देख-भाल करने लगती है पर बच्चा ऐसा हिल जाता है कि बागची दम्पति उसके पालन-पोपण का भार माधवी पर ही डाल देते है। उनके पहले बच्चे जाते रहे थे इसलिये वे चाहते थे कि कोई दूसरा पालेगा तो यह सतान बच जायगी। माधवी का हृदय माता का था। वह विवश होकर बच्चे के पालन-पोपण का भार ले लेती है। 'नशा' मे ईश्वरी एक ज़मीदार

जो हमारे समाज मे व्याप्त हो कर घरो को खोखला बना रही है। वह भावना है पाश्चात्य सभ्यता की। एक सीधी-सादी पुराने विचारो की महिला शान्ति अंग्रेज़ी पढे लिखे पति के यहाँ विवाहित हो कर आती है। पति देव चाहते है कि वह फेशनेबुल तितली बने। शान्ति वैसा ही करती है। टैनिस, क्लब, मित्रो से मेलजोल शान्ति का दैनिक कार्यक्रम हो जाता है। पतिदेव की ओर उस का ध्यान नही जाता। वे बीमार पड़ते है और शान्ति उन की सेवा करती है पर समय कम मिलता है। मरते-मरते उन्हें शान्ति का वही पुराना रूप अच्छा लगने लगता है। 'कायर' कहानी मे प्रेमा नाम की एक लडकी अपने सहपाठी केशव से प्रेम करती है। दोनो भिन्न जाति के है। प्रेमा केशव की होने के लिये दृढ सकल्प करती है और माता-पिता को राज़ी कर लेती है पर केशव अपने पिता की फटकार पाकर अडिग नही रह सकता। वह शादी करने से इकार कर देता है और प्रेमा उस के कायरतापूर्ण व्यवहार से चोट खाकर मर जाती है। 'अलग्योझा' कहानी पारिवारिक मेल की कहानी है। भोला महतो ने दूसरा ब्याह किया है। पत्नी का नाम पन्ना है। भोला की पहली पत्नी से जो लडका है उस का नाम है रग्घू। नई माँ के दुर्व्यवहार पर भी रग्घू उस के लडको को प्यार करता है। लेकिन जब उस का व्याह हो जाता है तो उस की पत्नी मुलिया अलग रहने का निश्चय करती है। दैवयोग से बेचारा रग्घू चल बसता है। अब पन्ना का बडा लडका केदार मुलिया की देख-भाल करने लगता है। माँ ब्याह की बात कहती है तो टाल देता है। वह मुलिया की ओर आकृष्ट है। अन्त में मुलिया को ही वह अपनी पत्नी बनाता है और' यो अलग हुए प्राणी फिर मिल जाते है।

'मुक्ति का मार्ग' का क्षेत्र भी गाँव है और इसमे गाँवो के घृणित द्वेषभाव का कुपरिणाम दिखाया है। झींगुर गाँव का किसान है। जिसके खेतो मे अच्छी फसल हुई है। बुद्धू गड़रिया भी अपने मे खाता पीता है। उस पर भेड़ भी खूब है। एक दिन उसकी भेडे झींगुर के खेत की मेंड से जाती है और हरे-भरे खेतो मे मुँह भी मारने लगती है। झींगुर डंडा लेकर भेडो पर पिल पडता है। गाँव में अशान्ति के बादल छा जाते है। रात को बुद्धू झींगुर के खेत मे आग लगा देता है। झींगुर को असलियत का पता लग जाता है और वह बदला लेने की ठान लेता है। हरिहर चमार से सलाह कर ऊपर-ऊपर से बुद्धू से मेल रखता है और अपनी बछिया बुद्धू की भेडो मे चराने के वहाने बाँध देता है। एक दिन वछिया को स्वय विप देता है और वह मर जाती है। प्रायश्चित्त मे बुद्धू को तीर्थ यात्रा करनी पडती है। वह भी भीख माँगकर। पाँच सौ ब्राह्मणो को अलग से खिलाना पडता है। दोनो तबाह होकर मज़दूरी करने लगते है। 'माता का हृदय' की नायिका माधवी का पति मर चुका है। उसका एक लडका है, जो राजनैतिक आन्दोलन में जल चला गया है। मिस्टर बागची को माधवी अपने पुत्र को अकारण दण्ड देने का अपराधी मानती है और बदला लेने के लिये उनके घर नौकरी कर लेती है। आशय यह है कि उनके लडक को मार कर बदला ले ले। वह उनके बच्चे की देख-भाल करने लगती है पर बच्चा ऐसा हिल जाता है कि बागची दम्पति उसके पालन-पोषण का भार माधवी पर ही डाल देते है। उनके पहले बच्चे जाते रहे थे इसलिये वे चाहते थे कि कोई दूसरा पालेगा तो यह सतान बच जायगी। माधवी का हृदय माता का था। वह विवश होकर बच्चे के पालन-पोषण का भार ले लेती है। 'नशा' मे ईश्वरी एक जमीदार

का लडका है और वीर गरीब घर का। वीर जमीदारो के बडा खिलाफ है। एक बार ईश्वरी के निमत्रण पर वीर उसके गाँव पहुँचता है। कुछ ही दिन मे उसका नक्शा बदलने लगता है और वह ईश्वरी से ज्यादा शान शौकत से रहने लगता है। गाँव से लौटते समय थर्ड क्लास मे बैठने मे भी उसे सकोच लगता है। बैठ जाता है तो एक बेकसूर को मार भी देता है। अमीरी का अहकार उस पर सवार है। लेकिन उसकी बाबूशाही शीघ्र ही समाप्त हो जाती है क्योकि डिब्बे के आदमी व्यग और धमकी से उसे नीचा दिखाने का उपक्रम करते है। ईश्वरी भी समझाता-बुझाता है और उसका नशा उतर जाता है। 'बडे भाई साहब' मे छोटा भाई बडे से अधिक प्रतिभाशाली है। वह अपनी कुशाग्र बुद्धि से कई श्रेणी नीचे होने पर भी बडे के बराबर आ जाता है। बडा भाई उम्र का लाभ उठाकर उसे बरावर डाँटता रहता है। एक बार दोनो जिस श्रेणी मे है, उसमे छोटा पास हो जाता है और बडा फेल। फिर भी बडा भाई डाटता-फटकारता है। इस पर छोटा भाई कुछ नही कहता। 'बूढी काकी' में वृद्धो की मनोदशा का चित्रण है। घर मे दावत है। बुढिया भूखी-प्यासी एक कोठरी मे पडी है। कोई उसकी बात नही पूछता। भट्टी पर सिकती पूडियो और अन्य पकवानो की सुगन्ध उसे अधीर किये दे रही है। कई पगते खा चुकी तब भी बुढिया को न पूछा गया। हार कर वह जीमते हुए लोगो के बीच खिसक आई। लडके ने घसीट कर कोठरी मे डाल दिया। बहू ने भी बीस खरी-खोटी सुनाई। आखिर नातनी लाडली को ही दया आई और चोरी से कुछ खिलाने कोठरी में आई। बुढिया की रुचि जागी और नातनी का हाथ पकडे ही जूठी पत्तलो पर आ गई। तब बहू की आँखें खुली और बुढिया को भरपेट खाना मिला। 'घर जमाई'

मे विमाताओ से डरा हुआ हरिधन अपनी ससुराल मे रहने का ही निश्चय करता है और वहाँ से अपमानित हो कर लौटने पर विमाता के पास लौटता है। तब मिल कर परिवार बनाता है।

प्रेमचन्द की इन सामाजिक कहानियो मे अधिकाश का सम्बन्ध परिवार से है। अपनी पैनी दृष्टि से प्रेमचन्द ने परिवारो की भीतरी द्वन्द्व की झाँकी बडी सफलता से कराई है। यद्यपि उनकी सहानुभूति सयुक्त परिवार से है पर आर्थिक कारणो से संयुक्त परिवार बिखर रहा है। 'शखनाद', 'अलग्योझा' और 'घर जमाई' मे सयुक्त परिवारो की दयनीय अवस्था का ही चित्रण किया गया है। 'पच परमेश्वर', 'बडे घर की बेटी', 'माता का हृदय', 'शान्ति', 'नशा' आदि कहानियो मे मनोविज्ञान के तथ्यो के आधार पर जीवन की शाश्वत प्रवृत्तियो को उभारा गया है। 'कायर' जैसी कहानियाँ, जिनका सम्बन्ध स्वच्छन्द प्रेम से है, प्रेमचन्द ने कम लिखी है पर वे इस ओर से उदासीन न थे। अभिप्राय यह कि वे समाज और परिवार की किसी समस्या से वेखबर न थे। बूढे, बालक, युवा पुरुषो और विवाहित, अविवाहित और विधवा स्त्रियो के जीवन की जितनी दिशाएँ हो सकती हैं सब को उन्होने अपनी सामाजिक कहानियो मे लिया है।

राजनैतिक कहानियाँ

प्रेमचन्द की सामाजिक कहानियो का भी राजनैतिक महत्व है क्योकि जिस युग मे वे रह रहे थे उस युग की राजनीति समाज की हीनावस्था से किसी प्रकार भी अलग नही थी। फिर भी कुछ सीधी राजनीति से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ भी इन्होने लिखी है। 'सोजे वतन', जो

सरकार ने जब्त कर लिया था और 'समर यात्रा' की कहानियाँ राजनैतिक ही है। उन्ही के सम्बन्ध मे हम इस शीर्षक के अतर्गत विचार करेगे। राजनैतिक कहानियो मे कुछ तो कांग्रेस के आन्दोलन से सम्बन्ध रखने वाली है, कुछ साम्प्रदायिक समस्याओ से और कुछ कृषको और मज़दूरो के शोषण से। जो कहानियाँ सीधी, कांग्रेस के आदोलन से सम्बन्ध रखने वाली है। उनमे 'सत्याग्रह', 'मैकू' और 'समर यात्रा' जैसी कहानियाँ आती है। 'सत्याग्रह' एक व्यग है और प्रेमचन्द की जिन्दादिली का सबूत है। बनारस मे हिज़ एक्सीलेसी वायसराय महोदय का आगमन होने वाला है। कांग्रेस वाले चाहते है कि उस दिन अपनी घृणा व्यक्त करने के लिये हडताल रखी जाय। अमनसभाइयो को चिंता होती है। बेचारे परेशानी मे एक ब्राह्मण मोटेराम शास्त्री को सौ रुपया नकद देकर सत्याग्रह के लिये तैयार करते है। मन्तव्य यह है कि ब्रह्म-हत्या के भय से लोग हडताल न करगे। मोटेराम सौ रुपये लेकर और ढेरो इमरती, रसगुल्ले, मलाई के लड्डू, रबडी आदि खाकर अनशन करने बैठते है। लोग समझाते है पर वे नही मानते। लेकिन शाम होते होते पेट में चूहे दण्ड पेलने लगते है। आस-पास पुलिस वाले है। क्या करें। जैसे-तैसे पुलिस वालो को हटाते है। सौभाग्य से एक खोमचे वाला आता है। उसकी कुप्पी को जानबूझ कर गिरा देते है। वह तो तेल लेने जाता है और मोटेराम उसके खोमचे पर अँधेरे मे हाथ मारते है। इसके बाद कांग्रेस के मन्त्री मिठाई के दोने लिये उनके पास पहुँचते है और मोटेराम ललचाकर उन पर भी टूट पडते है। सारी कहानी में अमनसभाइयो और उनके गुर्गों के हथकण्डो का भण्डाफोड हुआ है। 'मैकू' पिकेटिंग से सम्बन्ध रखने वाली कहानी

है । ताड़ीखाने पर पिकेटिंग किया जा रहा है । स्वय-सेवक किसी को भी भीतर नही जाने देते । मैकू और कादिर भी वहाँ पहुँचते हैं । जब मैकू को एक स्वयसेवक रोकता है तो वह कसकर एक तमाचा मारता है, जिससे उसक गाल पर पाँच उँगलियाँ उछर आती है । मैकू ताड़ी-खाने में घुसता है पर उसका मन ग्लानि से भर उठता है । उसके बाद वह न शराब पीता है न वहाँ किसी को पीने देता है । डण्डा लेकर पियक्कड़ो पर टूटता है और शराब के बर्तन फोड़-फाड़ ताड़ीखाने को ही नष्ट कर देता है । 'समर यात्रा' मे गाँवो क भीतर काग्रेस के आन्दोलन के प्रचार की झाकी है । कोदई चौधरी के दरवाजे पर शामि-याना लगा हुआ है । स्वयसेवको के दल का स्वागत किया जाने वाला है । गाँव की सबसे बूढी महिला नोहरी स्वय सेवको के स्वागत म नाचती है । गाँव भर के लोगो मे उसके उल्लास की धूम मच जाती है । कुछ देर बाद स्वय सेवको का नायक गाँव वालो को सत्याग्रह मे शामिल होने की प्रेरणा देता है । इतने मे पुलिस आ जाती है । सब लोग भाग खडे होत है । अकेली नोहरी रह जाती है । वह दारोगा की बुरी तरह खबर लेती है । कोदई चौधरी भी सामना करने को तैयार हो जाते है । गिरफ्तारी होती है नायक ने पाँच सत्याग्रही माँगे थे उनमे एक नोहरी भी थी । इसी प्रकार 'होली का उपहार' मे अपनी पत्नी के लिये विदेशी साड़ी ले जाने वाला पति देश भक्त महिलाओ के प्रभाव से विदेशी कपड़ो का विरोधी हो जाता है । 'सुहाग की साड़ी' मे एक पत्नी अपनी सुहाग की साड़ी को विदेशी कपड़ो की होली में झोकने दे देती है । 'आहुति' नामक कहानी मे विश्वविद्यालय का एक छात्र अपनी पढाई छोड़ कर स्वराज्य-संघ मे शामिल हो जाता है । और कई

व्यक्तियो को साथ ले जाता है। 'कुत्सा' मे ऐसे काग्रेसी कार्यकर्त्ताओ का चित्रण है जो चन्द के पैसो से सिनेमा देखते, हवाखोरी करते और ऐश करते है।

राजनैतिक कहानियो मे प्रेमचन्द ने आन्दोलन की एक-एक दिशा को एक-एक कहानी मे रखा है। स्वदेशी का प्रचार और विदेशी का बहिष्कार, नशाबन्दी, सत्याग्रह आदि कोई ऐसी योजना नही जिस पर उन्होने विचार न किया हो। इसके साथ ही साथ उन्होने उस आन्दोलन के भीतरी दोषो और आन्दोलन द्वारा अपना उल्लू सीधा करने वाल लोगो के पाखण्ड का भी भण्डाफोड किया है। वैसे समग्र रूप से इन कहानियो मे प्रेमचन्द ने कांग्रेस के आन्दोलन से प्रभावित भारतीय जनता के उल्लास और उत्साह का चित्र खीचा है। किस प्रकार सामान्य जनता गाधी जी के नाम पर सजग राजनैतिक कार्यकर्त्ताओ से अधिक वीरता प्रदर्शित करती थी, यह इन कहानियो का केन्द्रीय भाव है।

राजनीति से सम्बन्ध रखने वाली साप्रदायिक समस्या की कहानियाँ भी इसी वर्ग मे है। वस्तुत. हिदू-मुस्लिम समस्या हमारी राजनीति का ही एक प्रमुख अग थी। यदि हम यह कहे कि यह हमारी घरेलू राजनीति थी और अग्रेज़ो और भारतीयो का सघर्ष बाहरी राजनीति तो भी अत्युक्ति न होगी। यो तो प्रेमचन्द ने सामाजिक कहानियो मे, भले ही उनका क्षेत्र शहर हो या गॉव, जहाँ तक हो सका है हिन्दू-मुसलमानो को एक साथ रख कर उनकी मौलिक समस्याओ को देखा है पर 'पचपरमेश्वर' कहानी इस दृष्टि से अद्वितीय है। परन्तु किस प्रकार दोनो सम्प्रदाय के लोग स्वार्थ-साधको से घिर कर अपने कर्त्तव्य

से पराङ् मुख होने को विवश किये जाते थे, इसका खुला रूप उन्होंने साम्प्रदायिक कहानियो मे दिया है। इस प्रकार की कहानियो के नमूने के लिए हम दो कहानियाँ ही लेते है--एक है 'मत्र' और दूसरी 'हिसा परमोधर्मः'। पहली कहानी का सम्बन्ध हिन्दू महासभा से है और दूसरी का सबध मुस्लिमलीग से। इन दोनो सस्थाओ के कट्टर-पथियो ने राष्ट्र को टुकडो मे बँटवाया है। पहली कहानी मे हिन्दू महासभा के नेता पडित लीलाधर चौबे शुद्धि के घोर पक्षपाती है। उन्हे खबर मिलती है कि मद्रास मे बड़े पैमाने पर हिंदुओ को मुसलमान बनाया जा रहा है। वे मद्रास पहुँच कर हिंदुओ को समझाते है। अपने को समदर्शी ऋषियो की सतान मानते है। एक अछूत पूछता है कि आप ऋषियो की सतान हो कर छुआछूत और ऊँच-नीच क्यो मानते ह ? साथ ही ब्राह्मण और अछूतो मे रोटी बेटी के व्यवहार की बात उठाता है। चौबे जी वर्णभेद को ऋषियो का किया मानते है तो वह कहता है--"यह सब पाखण्ड आप लोगो का रचा हुआ है। आप कहते है--तुम मदिरा पीते हो लेकिन आप मदिरा पीने वालो की जूतियाँ चाटते है। आप हमसे माँस खाने के कारण घिनाते है, लेकिन आप गोमाँस खाने वालो के सामने नाक रगडते है। इसलिये न कि वे आपसे बलवान् है। हम भी आज राजा हो जायें तो आप हमारे सामने हाथ बाँधे खड़े होगे। आपके धर्म म वही ऊँचा है जो बलवान् है। वही नीच है जो निर्बल है। यही आपका धर्म है।" पण्डित जी निरुत्तर है। चौबे जी को कत्ल कराने का प्रयत्न होता है पर वह अछूत ही अन्त मे बचाता है। प्रेमचन्द ने इस कहानी के अन्त मे सनातन धर्म की विजय कराई है और इस्लाम धर्म को उस से हेय ठहराया

है। यह ठीक नही हुआ पर इस से हिंदू साम्प्रदायिकता का पर्दा-फाश तो हो ही जाता है।

दूसरी कहानी 'हिंसा परमोधर्म' मे न केवल मुस्लिम साम्प्रदायिकता पर चोट की गई है वरन् सभी धर्मो पर व्यंग किया गया है। इस कहानी मे एक गॉव का मुसलमान युवक भटकते हुए शहर मे पहुँच जाता है। वह एक मन्दिर के चबूतरे पर बैठा है कि भक्त गण उसे घेर कर हिंदू बनाने की तयारी करते है। वह शुद्ध कर लिया जाता है। एक दिन वह देखता है कि मंदिर के सामने ही एक युवक एक बूढे को मार रहा है। जामिद उसे बचाने जाता है। बुड्ढा सयोग से मुसलमान है। जामिद युवक को उठाकर पटक देता है। परिणामस्वरूप सब हिंदू उस पर टूट पडते है। रात भर वह सडक पर पडा सवेरे मुसलमानो के द्वारा उसे उठाया जाता है। अब वह मुल्लाजी की देखरेख मे है। मुसलमान एक हिंदू औरत को भगाकर लाते है और मुल्ला के सामने पेश करते है। औरत उनसे बचना चाहती है। जामिद मदद करता है। मुल्ला जी जामिद पर नाराज होते है। जामिद अन्त मे गॉव की शरण लेता है। दोनो धर्मों की क्षुद्र मनोवृत्ति पर इस कहानी मे अच्छा प्रकाश डाला गया है।

शोषण और गरीबी सबधी कहानियो मे 'दूध का दाम', 'सदगति', 'कफन', 'सवासेर गेहूँ', 'पूस की रात' आदि को लिया जा सकता है। ये कहानियाँ अधिकतर अछूतो के जीवन से सम्बन्ध रखती है, जिनको बेगार करनी प ती है। 'दूध के दाम' कहानी मे बाबू महेशनाथ की स्त्री पुत्र उत्पन्न कर मर जाती है और उसके पालन पोषण का भार पडता है भूँगी दाई पर। वह जाति की चमारिन है। भूँगी

इस नये पुत्र को पाल-पोस कर बड़ा करती है और एक दिन अपने इकलौते बेटे को छोड कर स्वर्ग सिधार जाती है। उसके बाद महेशनाथ भूँगी के पुत्र के साथ कुत्ते का सा व्यवहार करते है। बाहर ही खाना देते है और एक बार जब वह भूल से अपनी माता द्वारा पाले गये उन के पुत्र को छू देता है तो घर से निकाल दिया जाता है। 'सद्‌गति' मे भी एक दुखी चमार पडित जी के द्वार पर बेगार करते मर जाता है। 'कफन' प्रेमचदजी की सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी कहानी है। इस मे बाप घीसू और बेटा माधो दोनो चमार है। घीसू की शादी पिछले साल हुई। बहू आ कर बेचारी मेहनत-मजदूरी करने लगी। बाप-बेटे आलसी और काम चोर, नौकर कौन रखे। अत मे एक दिन जवान बहू बुधिया प्रसव-पीडा में छटपटा कर जान दे देती है। बाप बेटे कफन के लिये चदा करते है। कफन लेने जाते है और सोचते है--"कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथडे भी न मिले उसे मरने पर नया कफन चाहिये।" वे ताडीखाने पहुँचते है और शराब के नशे मे दाहकर्म भी भूल जाते है। 'सवासेर गेहूँ' में कर्ज की वजह से गुलामी करने वाले शकर की करुण कथा है, जो एक बार सवासेर गेहूँ लेता है और बीस साल तक गुलामी कर के भी उन्हे चुका नही पाता। हार कर गरीब मर जाता है। 'पूस की रात' मे एक किसान अपने कुत्ते से लिपट कर जाडे की रात काट देता है और जिस खेत की रखवाली के लिये जाता है उसे जानवर खा जाते है। ये सब कहानियाँ भयकर शोषण और गरीबी की कहानियाँ है।

कुछ कहानियो में प्रेमचद ने मूक पशु-पक्षियो को ही कहानी का विषय बनाया है। 'दो बैलो की कथा', 'अधिकार चिन्ता', 'स्वत्व रक्षा' आदि ऐसी ही कहानियाँ है। कुत्ता,

गधा, घोडा और बैल उन के प्रिय पशु है। इन कहानियो म, यद्यपि पात्र पशु है पर उन के चित्रण मे उन के स्वभाव वाले मनुष्यो के ऊपर व्यग करना उन का उद्देश्य है।

ऐतिहासिक कहानियाँ

प्रेमचन्द वर्तमान के कलाकार थे और एक बार उन्हो ने प्रसाद के ऐतिहासिक नाटको को 'गुडे मुर्दे उखाडना' यह कर उन का मजाक उडाया था। तब भी उन्हो ने ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी और बहुत अच्छी लिखी पर उन की सख्या कम है। जहाँ तक उन की ऐतिहासिक कहानियो की विषय वस्तु का सबध है वह एक ओर उस राजपूत काल से ली गई है जो मुगल काल से मिला हुआ है और दूसरी ओर वह मुगल शासन काल से ली गई है। प्रसाद की भाँति सुदूर अतीत में प्रेमचद जी की दृष्टि नही गई। राजपूत काल से सबधित कहानियो में 'राजा हरदौल', 'रानी सारन्धा', 'मर्यादा की देवी', 'पाप का अग्नि कुण्ड' 'जुगनू की चमक' और 'धोखा' विशेष प्रसिद्ध है।

'राजा हरदौल' और 'रानी सारन्धा' मे क्रमश बुन्देलखण्ड के पुरुष और नारियो की वीरता की झाँकी है। राजा हरदौल दक्षिण मे गये। अपने भाई जुझारसिह की अनुपस्थिति मे राज्य सभालता है। होली के दिनो मे कादिरखाँ नामक तलवार चलाने में तेज मुसलमान बुन्देलखण्ड मे आता है और चुनौती देती है। कालदेव और मालदेव दोनो बुन्देलो से वह जब नही दबता तो राजा हरदौल उस से मोर्चा लेते है। वे अपनी भाभी रानी कुलीना से अपने भाई जुझारसिह की तलवार माँग कर युद्ध क्षेत्र मे उतरते और कादिरखाँ को हरा देते है। जुझारसिह दक्षिण से लौटते हुए जगल में विश्राम करने ठहरते है और राजा हरदौल

शिकार के लिये जाते है । दोनो की भेट होती है पर वे नगे पैरो भाई का चरण स्पर्श करना भूल जाते है । इस पर जुझारसिह ईर्ष्या से जल कर अपनी रानी से विष दिलवाना चाहते है । राजा हरदौल को पता चलता है तो स्वय ही विष पी लेते है । 'रानी-सारंधा' भी ऐसी ही कहानी है । रानी सारधा का भाई अनिरुद्ध युद्ध मे गया है । भाभी शीतला घर है । एक रात शीतला को नीद नही आती । इतने मे अनिरुद्ध गीले कपडो से घर मे घुसते है । पता चलता है कि उन के अन्य साथी तो वीरगति पा गये और वे हथियार छिनने के कारण भाग आये है । सारधा भाई की भर्त्सना करती है । इस पर भाभी से कहन-सुनन हो जाती है और सारधा प्रतिज्ञा करती है कि एक दिन मै दिखा दूंगी कि राजपूत रानियो को आन कितनी प्यारी होती है । कालान्तर मे उस की शादी राजा चम्पतराय से हो जाती है । वे मुगलराज्य के आश्रित हो जाते है जिस पर सारधा दुखी रहती है । वह एक दिन अपने मन की बात पति से कहती है जिस पर चम्पतराय मुगलो के विरोध मे हो जाते है । अतिम समय मे जब वह देखती है कि उस के रोगग्रस्त पति को मुसलमान मार ही डालेगे तो वह उन की छाती मे कटार मार कर पतिव्रता होने का प्रमाण देती है । 'मर्यादा की वेदी' मे झालावाड की राजकुमारी प्रभा का विवाह मन्दार के राजकुमार के साथ तय होता है । राजकुमारी उस से प्रेम करने लगती है पर तभी वह चित्तौड के राणा के द्वारा अपहृत होती है । वह वहाँ उदास रहती है । एक दिन मन्दार के राजकुमार उस के महल मे घुस आते है पर वह उन का तिरस्कार करती है । आवेश मे वे तलवार का वार करना चाहते है कि राणा आ जाते है । जब एक दूसरे के ऊपर हाथ छोडना चाहते

है तो प्रभा बीच मे आ जाती है और राणा की तलवार से स्वर्ग सिधार जाती है। 'पाप का अग्नि कुण्ड' 'जुगनू की चमक' और 'धोखा' नामक कहानियो मे इसी प्रकार त्याग, आदर्श-रक्षा और बलिदान की भावना का समावेश हुआ है।

मुगलकालीन इतिहास से सबधित कहानियो में 'वज्रपात', 'परीक्षा', 'दिल की रानी', 'लैला' और 'शतरज के खिलाडी' प्रमुख है। 'वज्रपात' और 'परीक्षा' दोनो कहानियो का मुख्य पात्र नादिरशाह है। 'वज्रपात' मे एक हीरे के लिए नादिरशाह रक्त की नदियाँ बहा देता है। वह हीरा नादिरशाह को फलता नही। उसे अपने पुत्र के प्राणो से उस का मूल्य चुकाना पडता है। अन्त में हीरा उस के पुत्र के शव के साथ ही गाड दिया जाता है। मानो यह सकेत हो कि युद्ध और हत्या से प्राप्त वस्तु का मूल्य अपने सर्वनाश द्वारा ही चुकाया जाता है। 'परीक्षा' मे नादिरशाह के विलासी जीवन का चित्र है, जिस मे उस के इशारे पर शाही हरम की बेगमे नग्न दशा मे खडी हो जाती है। वह आँख बन्द कर लेट जाता है पर किसी को यह साहस नही होता जो उसे मार कर बदला लेले। यह मानो मुगलो के शौर्य की परीक्षा का प्रसग हो। 'दिल की रानी' और 'लैला' ऐतिहासिक रोमास है। पहली तैमूर से सबधित है और दूसरी नादिरशाह से। दोनो मे सामान्य कुलो की कन्यायो को सम्राट् दिल दे बैठते है। वे ही राज्य करती है। उन के कारण ये क्रूर शासक दया और ममता की मूर्त्ति बन जाते है। 'शतरज के खिलाडी' अवध की नवाबी के अतिम दिनो की कहानी है। यह कहानी ऐतिहासिक कहानियो मे ही सर्वश्रेष्ठ नही है, प्रेमचद की समस्त कहानियो में भी इस का प्रमुख स्थान है। किस प्रकार मीर और मिर्जा दो

पात्र शतरज के खेल में डूबे रहते है, किस प्रकार वे आगे बढ़ती आती अँग्रेज़ फ़ौज से बेखबर है, किस प्रकार वे घर से बाहर पुराने खण्डहरो मे छिपे शतरज के वज़ीर के लिये आपस मे लड़कर मर जाते है, ये सब बाते बड़ी कुशलता के साथ प्रेमचन्द ने इस कहानी मे दिखाई है। ह्रासकालीन सामती समाज का जैसा चित्र इस कहानी में खीचा गया है वैसा सैकड़ो पृष्ठो मे भी सम्भव नही है।

सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक कहानियो मे से कुछ चुनी हुई कहानियो की सक्षिप्त रूप रेखा से परिचित हो लेने के बाद सामूहिक रूप से इन कहानियो के ऊपर विचार करना युक्ति सगत जान पडता है। वस्तुत प्रेमचन्द की कहानियो का क्षेत्र इतना व्यापक है, उनमें इतनी विविधता है कि प्रेमचन्द के अनुभव की विशालता पर आश्चर्य होता है। इतना होने पर भी कुछ तत्व ऐसे है, जो हमारे समक्ष जल के ऊपर तैरते काष्ठ-खण्ड की भाँति उभर आते है।

सब से पहली बात तो यह है कि प्रेमचन्द ने अपनी कहानियो मे ग्रामीण जनता के मूक और पीड़ित अग को वाणी और स्वाभिमान दिया है। इसीलिये उनकी सहानुभूति भी उसी अशिक्षित, अन्धविश्वासो से जकड़े और घोर ग़रीबी मे पिसते हुए वर्ग की ओर जाती है। 'पूस की रात' और 'कफन' आदि कहानियो मे उनका यही रूप हमारे सामने आता है। वैसे चाहे हम 'बड़े घर की बेटी' को लें चाहे 'अलग्योझा' को ले, चाहे 'मुक्ति का मार्ग' को लें, वे गाँव से बाहर नही गये है और वही की कहानियो में उन्होने इस बात की ओर संकेत किया है कि महान्

आदर्श यदि कही है तो हमारे गाँवो में। यद्यपि प्रेमचन्द ने 'सभ्यता का रहस्य', 'दुस्साहस', लाछन', 'खुदाई फौजदार', 'दो कब्रें' आदि कहानियो में नगर के जीवन को चित्रित करने की चेष्टा की है पर उनकी सहानुभूति उच्चवर्ग के या उच्चमध्यवर्ग के लोगो के साथ यहाँ भी नही है। उन पर वे व्यग ही करते दिखाई देते है। नागरिक जीवन की कहानियो मे भी उन्होने ऐसे ही पात्र चुने है, जिनको जी तोड मेहनत करने पर भी पेट भर खाना नसीब नही होता। 'दफ्तरी', 'चपरासी' और 'मृतकभोज' कहानियो में ऐसे ही अभागे पात्रो की जीवन-रेखायें है। 'दफ्तरी' मे रियासतहुसन के जीवन सघर्षो की प्रशसा करते हुए प्रेमचन्द कहते है—"गृहदाह मे जलने वाले वीर रणक्षेत्र के वीरो से कम महत्त्वशाली नही होते।" वे अपनी रुचि के पात्रो के सम्बन्ध में ऐसी ही उत्साहवर्द्धक उक्तियाँ कहते ह। परन्तु जब दूसरो के बल पर जीने वाले शहर के लोगो का चित्र उन्हे अभीष्ट होता है तो वे व्यगपूर्ण शैली मे अधिकाश के दुर्गुणो का ही चित्र अकित करते है। 'झाँकी' कहानी मे सेठ घूरेमल का यह रेखाचित्र इसके लिये पर्याप्त होगा—"सठ घूरेमल उन आदमियो मे से है जिनका प्रात को नाम ले लो तो दिन भर भोजन न मिले। उनके मक्खी-चूमपने की सेकडो ही दत-कथाये नगर मे प्रचलित है। कहते है कि एक बार मारवाड का एक भिखारी उनके द्वार पर डट गया कि भिक्षा लेकर ही जाऊँगा। सेठ जी भी अड गये कि भिक्षा न दूंगा, चाहे जो कुछ हो। मारवाडी उन्ही के देश का था। सेठ जी ने रत्ती भर परवाह न की।" आगे चल कर वह भिखारी मर जाता है तो धूमधाम से उनका दाह कर्म कर सेठ जी एक लाख ब्राह्मणो को भोजन कराते है। ऐसे ही 'ईदगाह कहानी में वे क्लबो

का मजाक उडाते हुए कहते हैं—"यहाँ शाम को साहब लोग खेलते है । बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, दाढ़ी मूछ वाले और मेमे भी खेलती है, सच । हमारी अम्मा को वह दे दो । क्या है वह, वैट तो उसे पकड ही न सके । घुमाते ही लुढक जायें ।" लेकिन शहर के प्रति प्रेमचन्द मे जो यह घृणा है, इसका कारण था । व हृदय से ग्रामीण थे । स्वय संघर्ष में रहे थे और शहर के लोगो क चोचलो को देख चुके थे । इसलिये स्वभावत. उनको गाँव ही भाते थे । वहाँ के भी सीधे-सादे किसान, अछूत और सर्वहारा वर्ग के लोग । जमीदार वहाँ भी उन्हें अच्छे न लगते थे क्योकि वे भी शहरी शोषको के भाईबन्द ही थे । दूसरी बात यह भी है कि प्रेमचन्द सोलह आने भारतीय थे जबकि नगर में पाश्चात्य संस्कृति के घातक प्रभाव ने मनुष्यता का ही लोप कर दिया है। अपनी 'पशु से मनुष्य' कहानी मे वे एक पात्र से कहलाते हैं—"मै सोशलिस्ट या डिमाक्रेट कुछ नही हूँ, मै केवल न्याय, धर्म और दीन का सेवक हूँ, मुझे वर्तमान शिक्षा और सभ्यता पर विश्वास नही है ।" वर्तमान सभ्यता पर विश्वास क्यो नही है यह वे 'सभ्यता का रहस्य' कहानी मे यो बताते है—"सभ्यता केवल हुनर के साथ ऐब करने का नाम है । अपने दोषो पर पर्दा डालने में यदि आप सफल है तो सभ्य नही तो असभ्य ।"

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो मे युग के चित्र और सामयिक आन्दोलनो के माध्यम से बडी-बडी समस्याओ को सुलझाते हुए भारतीयता के आदर्श की प्रतिष्ठा की है । अपनी कहानियो में उन्होने व्यक्ति के त्याग और बलिदान को हमारे समक्ष रखा है । सामाजिक और पारिवारिक कहानियो में ही नहीं राष्ट्रीय और ऐतिहासिक-कहानियों मे परिस्थितियो से पिसते हुए मनुष्य के हाथ में प्रेमचंद

ने त्याग और बलिदान की वह मशाल दे दी है, जो पाठक को उच्चादर्शों के लिए मर मिटने की प्रेरणा देती है। उनके पात्र, फिर वे चाहे स्त्री हो या पुरुष रूढियों और परम्पराओ से लडते हुए आगे बढते हैं।

प्रेमचन्द की कहानियो में यथार्थ परिस्थित का चित्र है और उसमें सुधार-भावना का पुट मिला हुआ है। उन्होने कुछ कहानियो मे रोमास को भी स्थान दिया है जैसे 'मिस पद्मा', जिसमे पाश्चात्य ढग के उन्मुक्त प्रेम का चित्र है, और 'घासवाली', जिसमे यौन-आकर्षण की प्रमुखता है। पर ऐसी कहानियाँ कम है। प्रेमचद समाज को आगे ले जाने वाले कहानीकार होने से ऐसी परिस्थितियो और घटनाओ को कहानी के लिये चुनते थे, जिनसे एक ओर तो समाज की जीर्ण-शीर्ण परम्पराओ का उन्मूलन हो और दूसरी ओर मनुष्य के भीतर साहस और शौर्य के भाव जगे। इस कार्य के लिये उन्हे अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखनी पडी। मनोविज्ञान इन कहानियो का प्राण है। 'आत्माराम' कहानी को ही लीजिये। प्रेमचन्द ने इस कहानी में दिखाया है कि धन मिलने से एक साधारण कोटि के व्यक्ति में अचानक ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि वह साधु हो जाता है। महादेव सुनार ने न जाने कितनो की सम्पत्ति धोखे से मारी। इसके साथ ही शराब और वेश्यागमन की बुराइयो से भी वह भरा है। ऐसा पापमय प्राणी एक तोता पाले हुए है, जिसका नाम उसने 'आत्माराम' रखा है। एक दिन वह पिजडे का द्वार खुलने से उड जाता है और एक पेड़ पर जा बैठता है। महादेव उसको पाने के लिये बडी रात तक प्रयत्न करता रहता है। वही चोर आकर चोरी किये धन का बटवारा करने बैठते है। वह खाँसता है। चोर भाग जाते हैं। धन

महादेव को मिल जाता है। वह सव का ऋण चुका, तीर्थयात्रा कर भोज देता है और सद्वृत्ति वाला वन जाता है। ऐसी कहानियो मे कल्पना-शक्ति से प्रेमचंद ने वडा काम लिया है। कुछ लोगो को प्रेमचन्द मे फ्रायडीयन मनोविज्ञान की कमी होने से वे कलाकार ही नही लगते पर उनका मनोविज्ञान जीवन की गतिशीलता ले कर चला है। वृत्तियो का विश्लेषण करते हुए बैठे रहना प्रेमचद जैसे मानवतावादी कलाकार के लिये सभव न था।

प्रेमचद का मानवतावाद ही उन्हे आदर्शवादी वनाये हुए है। यो उन्होने सव प्रकार की शैली की कहानियाँ लिखी। ऐतिहासिक प्रणाली के लिये उन की 'वज्रपात', और 'शतरज के खिलाडी' देखिये, आत्मकथात्मक प्रणाली के लिये 'चोरी' और 'वड़े भाई साहव', वार्तालाप-प्रणाली के लिये 'कानूनी कुमार' और 'जादू' को लीजिये, डायरी प्रणाली के लिये 'मोटे राम शास्त्री' की डायरी लीजिये और पत्र प्रणाली के लिये 'दो सखियाँ' और 'कुसुम' लीजिये। समर्थ कहानी लेखक की भाँति प्रेमचंद ने सव प्रकार की कहानियाँ लिखी पर उन का उद्देश्य तथ्य का उद्घाटन करना ही था। आरभ मे तो प्रेमचद ने अपनी कहानियों का उपसहार ही ऐसा किया है, जिस से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे नीति कथा जैसी कहानियाँ दे रहे है। उदाहरण के लिये देखिये—

"गाँव मे जिस ने यह वृत्तान्त सूना उसी ने इन शव्दों मे आनन्दी को सराहा—वडे घर की वेटियाँ ऐसी ही होती हैं।"—वडे घर की वेटी।

"अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनो के दिलो का

मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई लता फिर हरी हो गई।"—पचपरमेश्वर।

"ऐसा आदमी", सरदार साहब कह रहे है, "गरीबो को कभी न सतायेगा। उन का सकल्प दृढ है जो उस के चित्त को स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खा जाए परन्तु दया और धर्म से कभी न हटेगा।"—परीक्षा।

ये उन की आदर्शवादी कहानियो के उदाहरण है। ये कहानियाँ सभी प्रारभिक है पर उन की विकसित अवस्था और उत्कर्ष की अवस्था की कहानियो मे भी ये तत्त्व मौजूद है। इतना होते हुए भी प्रेमचन्द ने अन्तिम दिनो में कहानी से इस उपदेशात्मकता को निकालने का प्रयत्न किया था। वे घटना प्रधान कहानियो से चरित्र प्रधान कहानियो की ओर मुड गये थे। सन् १९३० मे उन्हो ने 'मानसरोवर' के प्रथम भाग में लिखा था—"गल्प का आधार अब घटना नही मनोविज्ञान की अनुभूति है। आज लेखक कवल कोई रोचक दृश्य देख कर कहानी लिखने नही बैठ जाता। उस का उद्देश्य स्थूल सौंदर्य नही है। वह ना कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है जिस मे सौंदर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओ का स्पर्श कर सके।" लेकिन इतना होने पर भी प्रेमचन्द न ऐसी कहानियाँ नहीं लिखी जो 'कला-कला के लिये' के सिद्धान्त की पोषक हो। अपनी 'शतरज के खिलाडी' कहानी द्वारा उन्हो ने उलटा कलावादियो का मज़ाक ही उडाया है। श्री केदारनाथ अग्रवाल ने यह बिल्कुल ठीक कहा है कि "प्रेमचन्द स्वय कभी भी कलावादी नही थे और न हो सकते थे क्योकि उन की दृष्टि यथार्थवादी थी और उन की आत्मा मानववादी थी। वे कहानियाँ इसलिये नहीं लिखते थे कि वे चतुराई का प्रदर्शन करें अथवा कथा के द्वारा

कौतूहल उत्पन्न करें। यही कारण है कि उन की कहानियो में कथानक सांप की गति से नही चलता । वहाँ प्रगट घटना के रूप मे कोई जादू का पर्दा नही खुलता । प्रेमचन्द की कला यथार्थ के व्यापक चित्रण को और आदर्श के अवतरण की सुन्दर कला है । अतएव प्रेमचन्द यथार्थ के निरूपण में कहानी-कला के नियमो तक की अवहेलना कर जाते है । प्रेमचन्द जीवन को आगे, कला को पीछे रखते हैं ।" (प्रेमचन्द और गोर्की पृष्ठ २२७)

प्रेमचन्द अपनी कहानियो में पहले पात्रो का परिचय देते है, फिर घटनाओ के घात प्रति घात और परिस्थिति की विषमता में उन पात्रो को डालते है और फिर सीधे अन्त की ओर बढते है यो सीधी रेखा मे उन की कहानी का विकास रहता है । वे साधारण जनता के कलाकार होने मे 'कलाबाजी' से दूर रहना चाहते थे । इस लिये घटनाओ की ऐसी योजना वे नही करते जो पाठको को आश्चर्य में डाल दे । वे उन स्थितियो को भी कहानी के लिये कम ही चुनते हैं, जिन में पेचीदगी हो और जिन का सबध गिने-चुने व्यक्तियो से हो । डाक्टर रामविलास शर्मा ने उन की कहानियो को ग्राम-कथाओ के रस और शैली पर आधारित बताते हुए लिखा है—"उन की काफी कहानियाँ ऐसी है जिन मे ग्रामीण कथाओं का रस और उन की शैली अपनाई गई है । आमतौर से उन की कहानियो मे जो एक ठेठपन है, पाठक के हृदय मे अपनी बात को सीधे उतार देने की जो ताकत है, वह उन्हो ने हिंदुस्तान के अक्षय ग्रामीण कथा-भण्डार से सीखी है ।" (प्रेमचन्द और उन का युग पृष्ठ १३५)

अपनी कहानियो में प्रेमचंद सीधा-सादा कथानक रखते है

पर पात्रो की मनोवृत्ति, वातावरण की झाँकी और वर्णन-कौशल से उसे अत्यन्त रोचक बनाये रखते है । 'हिंसा परमोधर्म ' में ढोंगी मुल्ला की मनोवृत्ति का चित्र देखिये—

"काजी साहब ने तलवार चमका कर कहा—पहले आराम से बैठ जाओ, सब कुछ मालूम हो जायेगा ।

औरत—तुम तो मुझे कोई मौलवी मालूम पडते हो । क्या तुम्हें खुदा ने यही सिखाया है कि पराई बहू-बेटियो को जबरदस्ती घर में बद कर के उन की आबरू बिगाडो ?

काजी—हाँ, खुदा का यही हुक्म है कि काफिरो को जिस तरह मुमकिन हो इस्लाम के रास्ते पर लाया जाए । अगर खुशी से न आते हो तो जबरदस्ती ।"

और 'पच परमेश्वर' कहानी मे पचायत का यह दृश्य कितना सजीव है ।

"पेड के नीचे पचायत बैठी । फर्श बिछा हुआ है । पान, इलायची, हुक्के तम्बाकू का प्रबध है। सूर्यास्त पचायत हुई ।

× × × ×

एक कोने मे आग सुलग रही थी । नाई ताबडतोड चिलम भर रहा था । यह निर्णय करना असंभव था कि सुलगते हुए उपलो से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमो से । लडके इधर-उधर दौड रहे थे । कोई आपस मे गाली-गलौज करते और कोई रोते थे । चारो तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझ कर झुण्ड के झुण्ड जमा हो गये थे ।" कभी-कभी व्यग और लक्षणा के प्रयोग से ही प्रेमचद काम चला लेते है। शतरज के खिलाडी मे वे लिखते है—'शाम हो गई । खण्डहरो ने चीखना शुरू किया । अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोसलो

मे चिमटीं पर दोनो खिलाड़ी डटे हुए थे, मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस मे लड़ रहे हो।" और 'बड़े भाई साहब' में बडा भाई छोटे से कहता है—"तुम अपने दिल मे समझते होगे, मे भाई साब से महिज एक दर्जा नीचे हूँ और अब उन्हे मुझ को कुछ कहने का हक नही है लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मे तुम से पाँच साल बड़ा हूँ और चाहे आज तुम मेरी जमाअत मे आ जाओ और शायद एक साल बाद मुझ से आगे भी निकल जाओ, लेकिन मुझ में तुम मे पाँच साल का अन्तर है। उसे तुम क्या खुदा भी नही मिटा सकता।"

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने उनकी वर्णन प्रधान शैली को लक्ष्य कर लिखा है—"प्रेमचन्द जी की प्राय सभी कहानियाँ सामाजिक पृष्ठभूमि पर वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है। उनमे शैली-सम्बन्धी विविधता भी नही है।" (प्रेमचद साहित्यिक विवेचन पृष्ठ १८६) पर प्रेमचन्द, जैसा कि कहा जा चुका है कला-प्रदर्शन करना नही चाहते थे और न वे कहानी-सम्बन्धी मान्यताओ से बँधना ही चाहते थे। आजाद तबियत के थे। परम्पराओ के गुलाम नही। इसलिए शोषित पीड़ित जनता के लिये लिखने का प्रण करके चले और जैसा मन आया लिखते चले गये। न भाषा शैली मे अजूबापन दिखाया और न कथा-शिल्प मे। जीवन का मार्मिक चित्र देना उनका ध्येय था। वह उन्होने दिया और इस रूप मे आज भी उनकी सी तडप और जिन्दादिली के लिये पाठक प्रतीक्षा कर रहा है, उनकी परम्परा को आगे ले जाने वाले लेखको को प्यार करने को आँखें बिछाये है। प्रेमचन्द की कहानियाँ अपने विषय-वैविध्य और वर्णन-प्राचुर्य के साथ उच्चादर्शों से सयुक्त होने के कारण ही जनता के गले का हार बनी हुई है।

प्रेमचन्द का अन्य साहित्य

प्रेमचद हिंदी मे उपन्यास और कहानी लेखक के नाते ही विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके शेष साहित्य की चर्चा बहुत कम हुई है। परन्तु उनका शेष साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नही है। यह ठीक है कि कलाकार प्रेमचद का विचारक रूप ही उनके शेष साहित्य मे विशेष रूप से प्रतिविम्बित हुआ है पर बिना उनके उस रूप को जाने प्रेमचद को समग्रत नही समझा जा सकता। दूसरी बात यह है कि उस साहित्य से प्रेमचद के व्यक्तित्व की व्यापकता, गहराई और उच्चता तीनो का बोध होता है। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त उनके साहित्य की शेष निधि इस प्रकार हैं—

जीवनी—(१) महात्मा शेख सादी, (२) दुर्गादास, (३) कलम, त्याग और तलवार।

नाटक—(१) कर्बला, (२) सग्राम, (३) प्रेम की वेदी।

निबंध—साहित्य का उद्देश्य।[1]

शिशु-साहित्य—(१) कुत्ते की कहानी, (२) जगल की कहानियाँ, (३) राम चर्चा, (४) मनमोदक।

अनुवाद—(१) सृष्टि का आरम्भ, (२) जार्ज बर्नाड शा का 'मैथ्यूशिला', (३) टाल्स्टाय की कहानियाँ, (४) 'सुखदास' जार्ज इलियट के 'सिलास मेरीनर' का अनुवाद, (५)

---

[1] पहले प्रेमचन्द के निबन्ध 'कुछ विचार' नाम से दो भागो में छपे थे। अब उन दोनो तथा 'हस' की कुछ और महत्वपूर्ण साहित्य-सम्बन्धी टिप्पणियो को मिलाकर 'साहित्य का उद्देश्य' नाम से छापा गया है।

'अहंकार' अनातोले फ्रास की 'थाया' का अनुवाद, (६) 'चाँदी की डिबिया' गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बाक्स' का अनुवाद (७) गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' का अनुवाद, (६) 'आजाद कथा' सरशार के 'फिसानए आजाद का' अनुवाद।

प्रेमचन्द द्वारा साहित्य की किस प्रकार सेवा की गई है, इसका आभास इस सूची से ही मिल जाता है। इन रचनाओ में से विशेप रूप से उनके नाटक और निबन्ध महत्व के है। इसलिये हम विस्तार से उन्ही पर विचार करेंगे। उनसे एक ओर उनकी सृजन-शील प्रतिभा का पता चलता है तो दूसरी ओर उनके विचारक और आलोचक रूप का। जहाँ तक जीवनियो का सम्बन्ध है, प्रमचद ने सन्तों, वीरों, साहित्यकारो और बलिदानियो के चरित्र ही लिये है। उनका उद्देश्य ऐसा जान पडता है कि जो व्यक्ति मानवता के लिये अपने जीवन को मिटा देता है वही प्रशंसा का पात्र है, उसी को गौरव मिलना चाहिए। बच्चो के लिये जो कहानियाँ, लिखी गई है वे अत्यत रोचक है। उनमे एक ओर 'रामचर्चा' जैसी पौराणिक रचनाएँ है तो दूसरी ओर 'जंगल की कहानियाँ' और 'कुत्ते की कहानी' जैसी काल्पनिक रचनाएँ भी है। प्रेमचद चाहे जो लिखे, सद्वृत्तियो को उभार कर रखना उनकी रचनाओ का प्राण होता है। उनकी भापा शैली मे विषयानुकूल परिवर्तन हो जाता है। वे जादूगर की तरह जिस भाव में चाहे आपको वहा सकते है। अनुवादो में नाटक और उपन्यास ही अधिक लिये गये है, फिर वे चाहे अग्रेजी के हो या फ्रेंच के या उर्दू के। अनुवादो से यह भी पता चलता है कि प्रेमचद का अध्ययन कितना विशाल था। अनुवाद के सम्बन्ध में प्रेमचद के विचार बड़े सुलझे हुए है। ऐसे लोगो की उन्होंने भर्त्सना की है, जो अनुवाद को अपनी जातीय वस्तु बनाने के लिए मूल रचना की हत्या किया करते है।

उन्होंने लिखा है—"कुछ लोगो की सम्मति है कि हमें अनुवादो को स्वजातीय रूप देकर प्रकाशित करना चाहिये। नाम सब हिंदू होने चाहिएँ। केवल आधार मूल पुस्तक का रहना चाहिए। मैं इस विचार का घोर विरोधी हूँ। साहित्य में मूल विषय के अतिरिक्त और भी कितनी ही बातें समाविष्ट रहती हैं। उसमें यथा-स्थान ऐतिहासिक, सामाजिक, भौगोलिक आदि अनेक विषयो का उल्लेख किया जाता है। मूल-आधार को लेकर शेष बातो को छोड देना वैसा ही है जैसे कोई आदमी थाली की रोटियाँ खाले और दाल, भाजी, चटनी, अचार सब छोड़ दे। अन्य भाषाओ का महत्व साहित्यिक नही होता, उनके आचार-विचार, रीति-रिवाज आदि बातो का ज्ञान भी प्राप्त होता है।" ('अहकार' की भूमिका से।)

वस्तुत प्रेमचद की विषय की पकड और सूझ-बूझ ऐसी अद्भुत थी कि वे जिस विषय पर विचार करते थे उसकी सर्वाङ्गीण रूपरेखा को दृष्टि में रख कर ही सोचते-विचारते थे। दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता के बिना वे कुछ लिखते ही न थे। जैसे वे जो कुछ लिखते हो वह सब कुछ केवल लिखने के लिये न हो, उसका मूल्य जनकल्याण की दृष्टि ही से आँका जाय।

नाटक

अब उनके नाटको को लीजिये। प्रेमचद ने तीन नाटक लिखे 'कर्बला', 'सग्राम' और 'प्रेम की वेदी। 'कर्बला' नाटक प्रेमचद के धार्मिक-अनुदारता से परे होने का प्रमाण है। "कर्बला" मुसलमानो के धार्मिक युद्ध की घटनाओ को लेकर लिखा गया है। 'कर्बला' के सम्बन्ध में उर्दू और फारसी में न जाने कितने मर्सिये लिखे गये है। हिंदी में

इस विषय का यह पहला प्रयत्न था । इधर आ कर राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'कावा और कर्बला' को काव्यात्मक रूप मे प्रस्तुत किया है । 'कर्बला' का उद्देश्य क्या था, इस के बारे मे उन्हो ने जमाना-सपादक मुशी दयानारायण निगम को लिखा था—"इसका मकसद पोलिटिकल है, बाहमी इत्तहाद (परस्पर एकता) को बढाना और कुछ नही ।" इस नाटक को लिखने के लिये प्रेमचद ने हज़रत-हुसैन से सबधित इतिहासो की बडी उत्साह से छानबीन की थी और यह कोशिश की थी कि कोई बात ऐसी न हो जो इतिहास के खिलाफ हो । सुनते है कि प्रेमचन्द के बावजूद बहुत कुछ सावधान रहने के और कोई इस्लाम विरुद्ध बात न आने के भी कुछ शिया मुसलमानो ने इसे पसद न किया । इस पर प्रेमचन्द को बहुत दु.ख हुआ । उन का इस सबध मे जो पत्र-व्यवहार मुशी दयानारायण निगम से हुआ और जिस का एक वाक्य उद्देश्य-निदर्शन के लिये हम कुछ ही ऊपर दे चुके है उस मे प्रेमचद ने ऐतिहासिक नाटको के सबध मे बड़े महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये है । वे कहते है—"तारीख (इतिहास) और तारीखी ड्रामा (ऐतिहासिक नाटक) मे फर्क है । तारीख (इतिहास) और तारीखी ड्रामा (ऐतिहासिक नाटक) के खास करेक्टरो (चरित्रों) में तो कोई तगय्युर (परिवर्तन) नही कर सकता, मगर सानवी करेक्टरो (साधारण पात्रो) में तब्दीली और तरमीम (संशोधन) यहाँ तक कि तखलीफ (निर्माण) मे भी उसे आज़ादी है ।" वे नाटक के दो भेद भी करते है—"ड्रामा दो किस्म के होते है—एक करअत (पढने) के लिये, एक स्टेज के लिये । यह ड्रामा महज पढने के लिये लिखा गया है, खेलने के लिये नही ।" (प्रेमचद और गोर्की पृष्ठ २५)

तो कर्बला एक पठनीय नाटक है जिसे प्रेमचद ने हिंदू मुसलमानो में पारस्परिक प्रेम की स्थापना के उद्देश्य से लिखा है । प्रेमचंद दिखाना यह चाहते थे कि जहाँ सत्य-प्रेम है, बलिदान-भाव है वहाँ जाति-पाँति और धर्म का कोई महत्त्व नही है । उन्हो ने हजरतहुसैन का चरित्र पढ़ा और उन्हें बडी श्रद्धा हुई वह श्रद्धा ही नाटक के रूप में सामने आई । इस नाटक में केवल मुसलमान पात्र ही नही है । कुछ हिंदू पात्र भी है । ये हिंदू पात्र प्रेमचद की कल्पना या मुसलमानो को खुश करने की गरज से नही आये है । इस का कारण इतिहास लेखको के वे गान्य मतव्य है, जो हमे यह बताते है कि कुछ हिंदू भी हुसैन के साथ कर्बला के सग्राम मे सम्मिलित हो कर वीर गति को प्राप्त हुए थे । यह नाटक दु खान्त है, जिस मे हुसैन की मृत्यु की घटना का समावेश है । प्रयत्न यह किया गया है कि हुसैन के बलिदान से प्रेरणा ल कर हिंदू और मुसलमान धार्मिक कठमुल्लेपन के विरोध में खडे हो, केवल बाह्याचारों के जाल मे फँस कर अपने कर्तव्य को न भुला दे । स्त्री पात्रो का इस नाटक मे नितान्त अभाव है । यो तो ऐतिहासिक नाटको मे युद्धो और लड़ाइयो के आधिक्य के कारण नारी पात्रो की सभावना कम ही रहती है पर 'कर्बला' में धर्म का तत्त्व भी मिला हुआ है । फिर मुसलमानो में युद्ध, फिर चाहे वह धर्मार्थ हो या देश-विजयार्थ, स्त्रियो को आने की आज्ञा नही देता । हिंदू स्त्रियो के जौहर जैसी वस्तु वहाँ नही है ।

कर्बला में प्रेमचद ने गीतो के स्थान पर उर्दू शायरो की गजले रख दी है, जो बडी उपयुक्त है । ये गज़ले वीर-भावोत्तेजक और नाट्यकथा को गति देने वाली है । बडे मज़े की बात यह है कि हिंदी के कवि श्रीधर पाठक

की एक स्तुति भी यहाँ मौजूद है। जहाँ तक भाषा का सबध है, प्रेमचंद ने हिंदी की उर्दू शैली को विशेष रूप से अपनाया है। वैसे जब मुसलमान पात्र ही इस नाटक मे अधिक है तब उन के अनुकूल ही भाषा भी होनी ही चाहिए थी।

इन का सब से अधिक प्रसिद्ध नाटक 'सग्राम' है। यह नाटक किसान-जमीदार सघर्ष पर आधारित है और इस का विषय भी वही है, जो उन के उपन्यासो मे बहुधा प्रकट हुआ है। फिर प्रेमचद ने यह नाटक क्यो लिखा ? इस के उत्तर मे हम प्रेमचद के ही उन शब्दो को उद्धृत करते है, जो उन्हो ने 'संग्राम' की भूमिका मे कहे है। वे है—"आजकल नाटक लिखने के लिये सगीत का जानना जरूरी है। कुछ कवित्व शक्ति भी होनी चाहिए। मै इन दोनो गुणो से असाधारणत वचित हूँ। पर इस कथा का ढग ही कुछ ऐसा था कि मै उसे उपन्यास का रूप न दे सकता था। यही इस अनधिकार चेष्टा का मुख्य कारण है।" ('सग्राम' की भूमिका)

वह कथा भी यो है कि गाँव मे एक जमीदार है सबलसिह। बडे भले, साधु-प्रकृति, सदाचारी, गाँव में सब के सम्मान और श्रद्धा के पात्र है। उन का एक भाई कचनसिंह है, जो स्वयं भी अपने भाई की तरह ही अच्छे विचारो का है। ये दोनो ही गाव के मालिक है। इन का संघर्ष होता है हलधर किसान से। सघर्ष का कारण है हलधर की पत्नी राजेश्वरी। बात यो होती है कि राजेश्वरी पर सबलसिंह की दृष्टि पड़ती है। सौदर्य की मदिरा मे उन्मत्त सबलसिंह आगा-पीछा भूल कर उस के पीछे पड जाते है। उसे अपनी वासना पूर्त्यर्थ शहर मे ले जाकर रखते है। हलधर पर ऋण

है, सो बेचारा क्या करे ? असमर्थ है ? सघर्ष आगे बढता है—प्रेम के त्रिकोण से । राजेश्वरी के सौंदर्य का एक दूसरा ग्राहक और दिखाई देता है । वह और कोई नही सबलसिंह का भाई कचनसिंह ही है । सबलसिंह बडा है—छोटे की स्पर्द्धा नही कर सकता । कचनसिंह को कत्ल करने का निश्चय करता है । सबलसिंह की पत्नी इस गृह-कलह से तग आकर आत्म-हत्या कर लेती है । अब हलधर गाँव वालो की सहायता से अपनी पत्नी की रक्षा के लिए उद्यत होता है । उस का कर्ज़ गाँव वाले चुका देते हैं और वह ज़मीदार के कत्ल की योजना बनाता है । अन्त मे स्थिति बेचारी राजेश्वरी के द्वारा ही सभाली जाती है । वह दोनो भाइयो म मेल करा देती है ।

यह 'सग्राम' की मुख्य कथा है । यदि हम मानें तो एक गौण कथा भी मानी जा सकती है । वह सबलसिंह की पत्नी ज्ञानी और चेतनदास सन्यासी की है । वह पुत्र लालसा के वशीभूत हो कर चेतनदास सन्यासी की धूर्तता का शिकार होती है । यह गौण कथा चेतनदास अकेले से ही चलती है । वही इसका केन्द्र है । फिर वह सबलसिंह की पत्नी ज्ञानी के पतन का ही कारण नही वह सबलसिंह की महाराजिन गुलाबी के रुपयों को दूना करने के लिये ले जा कर उस के साथ भी छल करता है ।

इस प्रकार इस नाटक की मुख्य कथा का प्रमुख पात्र सबलसिंह और गौणकथा का मुख्य पात्र चेतन दास दोनो वासना-लोलुप हैं । ऐसा लगता है कि प्रेमचद जी ने सामन्तवाद के अनैतिक पक्ष का उद्‌घाटन करने के लिये ही यह नाटक लिखा है । सयमशील व्यक्ति की भी दशा ऐसी भयानक हो जाती है कि व्यक्ति उस की दशा देखकर काँप उठता है । सबलसिंह सोचता है—'ज्ञानियो ने सत्य ही कहा है कि काम

के वश मे पड कर मनुष्य की विद्या, बुद्धि और विवेक सब नष्ट हो जाते हैं। वह नीच प्रकृति का है तो मनमाना अत्याचार करके अपनी तृष्णा को पूरी करता है। यदि विचारशील है तो कपट-नीति से अपना मनोरथ सिद्ध करता है। इसे प्रेम नही कहते, यह है काम-लिप्सा। और चेतन-दास को देखिये। किस प्रकार ज्ञानी को अपने दम्भ से पतित बनाने वाला साधु अन्त में पश्चात्ताप करता है—"मै हत्यारा हूं, पापी हूं, धूर्त हूं। मैंने सरल प्राणियो के ठगने के लिये ही यह वेश बनाया है। मैंने इसीलिये योग की क्रियाये सीखी, इसीलिये हिप्नोटिज्म सीखा। मेरा लोग कितना सम्मान, कितनी प्रनिष्ठा करते है। पुरुष मुझसे धन मांगते है, स्त्रियाॅ मुझसे सतान माँगती हे। मै ईश्वर नही कि सब की मुरादे पूरी कर सकूं तिस पर भी लोग मेरा पिण्ड नही छोडते। मैने कितने घर तबाह किये, कितनी सती स्त्रियो को जाल में फंसाया, कितने निश्छल पुरुषो को चकमा दिया। यह सब स्वाँग केवल सुखभोग के लिये, मुझपर धिक्कार है।" और ज्ञानी की दशा यह है—"मैने सतान-लालसा के पीछे कुल में कलक लगा दिया। कुल को धूल मे मिला दिया। पूर्व जन्म में मैने न जाने कौन-सा पाप किया था। चेतनदास तुमने मेरी सोने की लका धूल में मिला दी।" कचनसिह का जीवन-दर्शन यह है—"राजेश्वरी! मै महापापी, अधर्मी जीव हूँ। मुझे यहाँ एकान्त मे बैठने का, तुम से ऐसी बाते करने का अधिकार नही है। पर प्रेमाघात ने मुझे संज्ञाहीन कर दिया है।" अभिप्राय यह कि 'सग्राम' के पात्र अनैतिकता के कीचड मे फँसे हे। ये उच्च मध्य वर्ग के ह्रासोन्मुख प्रतिनिधि है।

लेकिन 'सग्राम' में केवल यही नही है। यद्यपि इसमे भूमि, धन और नारी के लिये सग्राम है पर प्रेमचद ने ग्राम-

जीवन का जो चित्र अकित किया है वह लाजवाब है। उपन्यासो की कडी को जोडने वाले इस नाटक के ग्राम्य-चित्र वैसे ही सजीव और यथार्थपूर्ण हे। जमीदार, थानेदार, कारिन्दा और चपरासी किसान को शोषण करने वाली सब जोकें यहाँ मौजूद हे। यदि देखा जाय तो 'सग्राम' का आधार ही शोषण है। बचारे हलधर को कुछ ऋण के कारण दबाया जाता है और उसकी पत्नी को छीन लिया जाता है। लेकिन वह मर्यादा पर मिटना चाहता है। जब एक-बार उससे कहा जाता है कि २० हजार रुपये ले लो और औरत की बात न सोचो तो वह साफ कह देता है—"स्त्री चाहे सुन्दर हो, चाहे कुरूप, कुल मरजाद की देवी है। मरजाद रुपयो पर नही बिकती।" अन्त तक वह मानसिक सघर्ष में रहता है पर अपने आदर्श से नही डिगता। यह जानकर कि राजेश्वरी ने अपने को पतित होने से वचा लिया है, वह उसे अपना लेता है। सलोनी इसका सब से सबल पात्र है। वह एक ओर हलधर को समझाती है और दूसरी ओर वह किसानो की गरीबी का जीता जागता रूप है। फत्तू, मँगरू और हरदास हलधर के साथी किसानो को वह बराबर उत्साह देती है। पहले ही अक में वह अपनी बेबसी का परिचय भी देती है। किसाना की दशा का यह चित्र जो उसने खीचा है आज भी सही है—"न जाने उपज नही होती कि कोई ढो ले जाता है। बीस मन का बीघा उतरता था। २०) हाथ मे आ जाते थ तो पछाई बलो की जोडी द्वार पर बँध जाती थी। अब देखने को रुपया तो बहुत मिलता है पर ओले की तरह देखते-देखते गल जाते है। अब तो भिखारी को भीख देना भी लोगो को अखरता है।" आज की परिस्थिति पर भी ये शब्द ज्यो के त्यो खरे उतरते है।

'सग्राम' के किसान बडे सजग है। वे क्या ढोगी साधुओ, क्या जमीदारो और क्या सरकारी अफसरो सब की पाल जानते है। फत्तू चेतनदास के विषय मे कहता है—'भीख मांगते है और क्या करते है। अपना टहल करवाते है, बर्तन मँजवाते है, गाँजा भरवाते है। भोले आदमी समझते है बावा जी सिद्ध है, प्रसन्न हो जायँगे तो एक चुटकी राख मे भला हो जायगा। मुकुत बन जायगी वह घाते मे।" सरकार के बारे मे हलधर की टिप्पणी है—"क्या सरकार के जोरू-बच्चे नही है। इतनी बडी फौज बिना रुपये के ही रखी है। एक-एक तोप लाखो मे आती है। हवाई जहाज कई-कई लाख के होते है। सिपाहियो को कूच के लिये हवा गाड़ी चाहिए। जो खाना यहाँ रईसो को मयस्सर नही होता वह सिपाहियो को खिलाया जाता है। साल में छः महीने सब बडे-बडे हाकिम पहाडो की सैर करते है। देखते तो हो छोट-छोटे हाकिम भी बादशाहो की तरह ठाट से रहते है, अकेली जान पर १०–१५ नौकर रखते है। एक पूरा बगला रहने को चाहिए।" रेल मे कैसे वे फर्स्ट क्लास में सफर करते है, कैसे उनकी स्त्रियाँ बच्चों को दाइयो से पलवाती है, कैसे वे स्वर्ग-सुख लूटते है—वह भी बिना परिश्रम किये।" ये सब बात फत्तू ने गाँव के लोगो को बताई है। सलोनी जब उससे लगान मे छूट के लिये दरख्वास्त देने को कहती है तो वह सरकारी मशीनरी के बारे मे अपना अनुभव बताता है—"कह तो दिया दो चार आने की छूट हुई भी तो बरसों लग जायेगे। पहले पटवारी कागद बनायेगा, उसको पूजो, तब कानून जाँच करेगा, उसको पूजो; तब तहसीलदार नजरसानी करेगा, उसको पूजो; तब डिप्टी के सामने कागज पेश होगा, उसको पूजो; वहाँ से तब बड़े साहब के इजलास में जायगा वहाँ अहलमद और

अरदली और नाजिर सभी को पूजना पडेगा। बडे साहब कमसनर को रिपोट देंगे, वहाँ भी कुछ न कुछ पूजा करनी पडेगी। इस तरह मनजूरी होते-होते एक जुग बीत जायगा।" जमीदार क्या है ? सरकार के गुलाम। एक इन्स्पेक्टर ठाकुर सबलसिह को डाँटता हुआ कहता है—"तुम हमारा बनाया हुआ है। हम ने तुमको अपने काम के लिये रियासत दिया है और तुम सरकार से दुश्मनी करता है।" एक डाकू का कथन है—"कुकरम क्या हमी करते हे। यही कुकरम तो ससार कर रहा है। सेठ जी रोजगार के नाम पर डाका मारते हे, अमले घूस के नाम से डाका मारते है, वकील मेहनताना के नाम से डाका मारते है।" यो प्रेमचन्द ने हमारी वर्तमान व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा 'सग्राम' मे खोला है। इस व्यवस्था से छूटने का उपाय उन्हो ने स्वराज्य को बताया है। गुलाबी महाराजिन के पुत्र भृगु और उनकी पत्नी चम्पा के द्वारा सास-बहू की रूढिवादी विचारधारा का परिचय दिया है।

नाटक के सवाद बडे ही चुस्त और अर्थ पूर्ण है। जैसा कि प्रेमचद जी ने लिखा है, कुछ काट छाँट के बाद इसे खेला भी जा सकता है। भाषा पात्रानुकूल है। गठन की दृष्टि से भी नाटक बुरा नही है। किसान-जमीदार सघर्ष पर आधारित होने के कारण इसका प्रभाव बडा गहरा पड़ता है।

'प्रेम की वेदी' प्रेमचद का तीसरा नाटक है। प्रेमचद ने इस नाटक में अन्तर्जातीय विवाह का प्रश्न उठाया है। 'रगभूमि' में विनय और सोफिया की मैत्री में जैसे हिन्दू और ईसाई दो धर्मों के मानने वालो के बीच प्रेम होता है और वे मिल नही पाते वैसे ही 'प्रेम की वेदी'

मे भी जातिगत सकीर्णता पर भी प्रेमी का वलिदान हो जाता है। कथा के सगठन के लिये दो परिवार लिये गये है—एक हिन्दू परिवार और एक ईसाई परिवार। हिन्दू परिवार में योगराज और उसकी पत्नी उमा है। ईसाई परिवार में जेनी और उसकी माँ मिसेज़ गार्डन है। नाटक में प्रेम का त्रिकोण बनाने के लिये विलियम आता है। मिसेज़ गार्डन जेनी को विलियम के साथ वैसे ही वाँधना चाहती है, जैसे रंगभूमि मे मिसेज़ जानसेवक सोफिया को मिस्टर क्लार्क के साथ वाँधना चाहती थी। लेकिन क्लार्क और विलियम में अन्तर यह है कि क्लार्क बड़ा चतुर, वीर और समझदार था। विलियम फूहड, कायर और मन्द-वुद्धि है। विनय और सोफिया के जोडे से योगराज और जेनी के जोडे मे एक और अन्तर है और वह यह है कि विनय अविवाहित था, योगराज विवाहित है। जेनी का आकर्षण उसके प्रति वढता ही जाता है। उन दोनों के मिलन मे दो वाधाये है। पहली वाधा योगराज की पत्नी उमा है। दूसरी धर्म की है। प्रेमचद ने पहली वाधा को तो उमा की मृत्यु से दूर कर दिया है पर दूसरी के दूर करने की सामर्थ्य उनमें नही है। परिणाम यह होता है कि योगराज और जेनी नही मिल पाते। यहाँ भी वलिदान पहले योगराज का होता है। रगभूमि मे प्रेमचन्द को राजनीति का विशाल पट वुनना था। वहाँ वह समस्या अविकसित ही रह गई थी। हमें ऐसा लगता है कि प्रेमचद ने 'प्रेम की वेदी' मे अपने विवाह-सम्वन्धी विचारो को स्पष्ट करने के लिये ही यह कथानक चुना है।

इस नाटक का सव से प्रवल पात्र जेनी है। वह आधुनिक विचारों की लड़की है, जो स्वतत्र रूप से जीना चाहती है।

नारी-अधिकारो के लिये वह बडी सजग है। उसकी माँ जब उससे पूछती है कि तू विवाह क्यो नही करना चाहती वह कहती है कि शादी करना मर्द की गुलामी है। वह शादी करने वाली सभी स्त्रियो को गुलाम समझती है। पुरुषो से उसे सख्त घृणा है। पुरुषो के प्रेम को वह दिखावा मात्रा मानती है। वास्तव में पुरुष स्त्री की आजादी छीन कर जो कुछ उसके लिये करता है वह कुछ नही है। विवाह करके स्त्री का रूप क्या होता है, यह उसी के शब्दो मे सुनिये—"पुरुष विवाह करके स्त्री का स्वामी हो जाता है, स्त्री विवाह करके पुरुष की लौडी हो जाती है। अगर वह पुरुष की खुशामद करती रहे, उसके इशारो पर नाचती रहे, तो उसके लिये रुपये है, गहने है, रेशमी कपडे है लेकिन जरा भी स्त्री ने स्वेच्छा का परिचय दिया, जरा भी आत्म-सम्मान प्रकट किया, फिर वह त्याज्य है, कुलटा है, पुरुष उसे क्षमा नही कर सकता। पुरुष कितना ही दुराचारी क्यो न हो, स्त्री जबान नही हिला सकती । उसका धर्म है, पुरुष को अपना खुदा समझे। मै यह बरदाश्त नही कर सकती।" प्रेमचन्द ने जेनी द्वारा स्त्रियो की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट कराया है । वे मानो उसके मुख से अपनी ही बात इस प्रकार कहते हो—"आदि में स्त्री पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती थी, उसी तरह जैसे पशु, अनाज या घर। जैसे आज जायदाद पर डाके पडते है उसी तरह उस समय भी होता था। पुरुष अपने सूरमाओ को लेकर लडकी के ऊपर छापा मारता था, कन्या विजेताओ के घर मे कैद हो जाती थी। उसके हाथो में हथकडियाँ डाल दी जाती थी, पैरो में बेडियाँ और गले में तौक।"

ऐसे क्रान्तिकारी विचारो की लडकी है जेनी। फिर भी वह पुरुष से प्रेम करती है। वह विवश है। प्रकृति

से नारी अलग रह ही नही सकती । वह योगराज की ओर आकर्षित है। उमा के मरने से उसका रास्ता भी साफ है। स्वय योगराज भी उसके प्रेम मे व्याकुल है पर वह उससे विवाह नही करती । उसके लिये वह बहुत कुछ दलीलें देती है । उनमें से दो की ओर हमारा ध्यान जाता है । पहली दलील तो यह है कि न तो वह यह बरदाश्त कर सकती है कि कोई योगराज पर यह आक्षप लगाये कि वह औरत के पीछे ईसाई हो गया और न वह स्वय शुद्ध होना चाहती है क्योकि वह शुद्धि को ढोग समझती है । दूसरे उसे बहुत-सी ईसाई धर्म की बातें खटकती है और हिंदू-धर्म की भी कुछ रूढियो को वह पसन्द नही करती । लेकिन हमें उसकी दलीले थोथी लगती है । यदि ऐसा ही है तो फिर वह प्रेम क्यो करती है ? सच बात तो यह है कि वह नारी स्वातत्र्य की भावना से इतनी दबी है कि पुरुष के साथ उसकी रक्षा नही कर सकती । वह मनोविज्ञान की दृष्टि से अधिकार-भावना से पीडित है । कायरता भी उसमे है । प्रेम तो कभी सामाजिक बन्धनो को स्वीकार ही नही करता । पर उसकी दलील का क्या महत्व रह जाता है । वह कहती तो यह है कि विवाह करके मै तुम्हें घोर सकट मे नही डालना चाहती पर वस्तुत वह अपने को सकट मे डालने से डरती है। उसकी भीरुता बाद में प्रकट होती है जब योगराज के मरने के बाद वह अपनी माँ से कहती है—"मुझे स्वर्ग की विभूति मिल रही थी मामा! मैंने समाज के भय से उसे ठुकरा दिया ।" वह अपने धर्म को योगराज की मृत्यु का कारण मानती है । उसमें वह शक्ति नही जो धार्मिक संकीर्णता और जातिवाद से ऊपर उठ सके। परन्तु इसके लिये हम उसे दोषी नही

ठहराते । मनुष्य मे समाज विरुद्ध जाने की बहुत कम हिम्मत होती है ।

प्रेमचन्द ने जेनी के द्वारा अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया है। हमारा विश्वास है कि प्रेमचद न धार्मिक मतभेद और पाखण्ड का जसा भण्डाफोड 'प्रेम की वेदी' में किया है वैसा किसी और कृति में नही । उन्होने इन शब्दो में धम की निन्दा की है—"आज जिस तरह दौलत आदमियो का खून वहा रही है उसी तरह इससे ज्यादा बेदर्दी धर्म ने आदमियो का खून बहाकर की है । दौलत कम से कम इतनी निंदयी नही होती, इतनी कठोर नही होती । दौलत वही कर रही है, किसकी उस से आशा थी लेकिन धर्म तो प्रेम का सन्देश लेकर आता है और काटता है आदमियो के गले ।" ऐसा इसलिये होता है कि धर्म भी पूँजीवादी और शोषक समाज ही का एक अग है, जिस मे गरीबो को भुलावा देकर रखा जाता है । वह मानव-मानव मे भेद-भाव उत्पन्न करके उसे अशिक्षा, भाग्यवाद, दीनता और शोषण की चक्की मे पीसने का काम करता है । प्रेमचद ने बडे जोरदार शब्दो में धर्म के प्रतिक्रियावादी रूप का पर्दाफाश किया है । जेनी एक स्थान पर कहती है—"हमारे जितने धर्म है सभी बिगडे हुए समाज को सुधारने की तदबीरे है, लेकिन धर्म पर खुदा की कुछ ऐसी मार है कि वह आते तो सुधार के लिए है लेकिन उल्टा बिगाड कर जाते है । यही पुराने जमाने की गिरोहबन्दी है, जब गुफाओ में बसने पाला आदमी हिंसक पशुओ जैसी अपनी ही जाति की दूसरी टोलियो से अपनी रक्षा करने के लिये गिरोह बना कर रहता था । नबी आये, वली आये, अवतार हुए, खुदा खुद आया, बार-बार आया । नतीजा क्या हुआ ? लडाई और कत्ल । रग का भेद, नस्ल का भेद—इन सब भेदो

को मिटाने का ठेका लिया धर्म ने; लेकिन वह स्वय भेद का कारण बन गया ।"

'प्रेम की वेदी' मे दो धर्म के व्यक्तियो मे प्रेम के आधार पर मिलन न हो सकना एक ढग है—धर्म की आलोचना का। इस के कथोपकथनो मे वह चुस्ती नही जो 'सग्राम' के कथोपकथनो में है। इसमे प्रेमचन्द ने धर्म और नारी की स्थिति पर खुलकर अपने विचारों को व्यक्त किया है । अत कथोपकथन व्याख्यान से हो गये है। लेकिन प्रेमचद के नाटक पाठ्य अधिक है और इस दृष्टि से उनकी सामाजिक मान्यताओ की जानकारी के लिये ये नाटक कुजी का काम करते है। अपने प्रगतिशील विचारो को प्रकट करने के लिए इनमे प्रेमचंद ने पर्याप्त स्थान पाया है। इन नाटको का महत्व नाटक की दृष्टि से भले ही उत्तम न हो पर प्रेमचद से विकासशील कलाकार को जानना इनके बिना असभव है। वैसे यदि प्रयत्न किया जाय तो कुछ फेर-फार करके इन्हे रगमच पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

निबन्ध

प्रेमचन्द के नाटको पर विचार कर लेने के वाद उनके निबधो पर विचार करना है। 'साहित्य का उद्देश्य' उनके ४० निबधो का सग्रह है। इसमे साहित्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए, उपन्यास और कहानी की विशेषताएँ क्या है, भाषा की समस्या कैसे सुलझ सकती है आदि बडे बडे विषयों से लेकर देवनागरी लिपि मे से शिरोरेखा क्यो हटनी चाहिए तक अनेक विषयो का समावेश है। हम नीचे क्रमश उनके निबन्धों मे निहित साहित्य की विभिन्न धाराओ और तत्सम्बन्धी विशेषताओ को उद्घाटित करने वाली बातो को लेगे ।

ठहराते। मनुष्य में समाज विरुद्ध जाने की बहुत कम हिम्मत होती है।

प्रेमचन्द ने जेनी के द्वारा अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया है। हमारा विश्वास है कि प्रेमचद न धार्मिक मतभेद और पाखण्ड का जसा भण्डाफोड 'प्रेम की वेदी' में किया है वैसा किसी और कृति में नही। उन्होने इन शब्दो में धम की निन्दा की है—"आज जिस तरह दौलत आदमियो का खून वहा रही है उसी तरह इससे ज्यादा वेदर्दी धर्म ने आदमियो का खून वहाकर की है। दौलत कम से कम इतनी निर्दयी नही होती, इतनी कठोर नही होती। दौलत वही कर रही है, किसकी उस से आशा थी लेकिन धर्म तो प्रेम का सन्देश लेकर आता है और काटता है आदमियो के गले।" ऐसा इसलिये होता है कि धर्म भी पूँजीवादी और शोषक समाज ही का एक अग है, जिस मे गरीबो को भुलावा देकर रखा जाता है। वह मानव-मानव मे भेद-भाव उत्पन्न करके उसे अशिक्षा, भाग्यवाद, दीनता और शोषण की चक्की मे पीसने का काम करता है। प्रेमचद ने बडे ज़ोरदार शब्दो मे धर्म के प्रतिक्रियावादी रूप का पर्दाफाश किया है। जेनी एक स्थान पर कहती है—"हमारे जितने धर्म है सभी बिगडे हुए समाज को सुधारने की तदबीरे है, लेकिन धर्म पर खुदा की कुछ ऐसी मार है कि वह आते तो सुधार के लिए है लेकिन उल्टा विगाड कर जाते है। यही पुराने ज़माने की गिरोहबन्दी है, जब गुफाओ में बसने वाला आदमी हिंसक पशुओ जैसी अपनी ही जाति की दूसरी टोलियो से अपनी रक्षा करने के लिये गिरोह बना कर रहता था। नबी आये, वली आये, अवतार हुए, खुदा खुद आया, बार-बार आया। नतीजा क्या हुआ? लडाई और कत्ल। रग का भेद, नस्ल का भेद—इन सब भेदो

को मिटाने का ठेका लिया धर्म ने; लेकिन वह स्वय भेद का कारण बन गया।"

'प्रेम की वेदी' मे दो धर्म के व्यक्तियो मे प्रेम के आधार पर मिलन न हो सकना एक ढग है—धर्म की आलोचना का। इस के कथोपकथनो मे वह चुस्ती नही जो 'सग्राम' के कथोपकथनो में है। इसमे प्रेमचन्द ने धर्म और नारी की स्थिति पर खुलकर अपने विचारों को व्यक्त किया है। अत कथोपकथन व्याख्यान से हो गये है। लेकिन प्रेमचंद के नाटक पाठ्य अधिक है और इस दृष्टि से उनकी सामाजिक मान्यताओं की जानकारी के लिये ये नाटक कुंजी का काम करते है। अपने प्रगतिशील विचारो को प्रकट करने के लिए इनमे प्रेमचद ने पर्याप्त स्थान पाया है। इन नाटको का महत्व नाटक की दृष्टि से भले ही उत्तम न हो पर प्रेमचद से विकासशील कलाकार को जानना इनके बिना असभव है। वैसे यदि प्रयत्न किया जाय तो कुछ फेर-फार करके इन्हे रगमच पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

निबन्ध

प्रेमचन्द के नाटको पर विचार कर लेने के बाद उनके निबधो पर विचार करना है। 'साहित्य का उद्देश्य' उनके ४० निबधों का संग्रह है। इसमे साहित्य का उद्देश्य क्या होना चाहिए, उपन्यास और कहानी की विशेषताएँ क्या है, भाषा की समस्या कैसे सुलझ सकती है आदि बडे बडे विषयों से लेकर देवनागरी लिपि मे से शिरोरेखा क्यो हटनी चाहिए तक अनेक विषयो का समावेश है। हम नीचे क्रमश उनके निबन्धों मे निहित साहित्य की विभिन्न धाराओ और तत्सम्बन्धी विशेषताओं को उद्घाटित करने वाली बातों को लेंगे।

साहित्य और कला

साहित्य के विषय मे प्रेमचन्द ने सर्वाङ्गीण दृष्टि से विचार किया है। प्रेमचन्द जीवन के साथ साहित्य का अटूट सवन्ध मानते है। इसीलिये उन्होने साहित्य के विषय मे कहा है—"साहित्य उसी रचना को कहेगे, जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ, परिमार्जित और सुन्दर हो और जिसमे दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो।" (साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ २) यह वात स्पष्ट है कि जीवन की सचाई को प्रमचन्द साहित्य के लिये आवश्यक मानते है इसी कारण उनका कहना है कि "मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है।" प्रेमचन्द के विचार से जो साहित्यकार जीवन और उसकी सचाई से इन्कार कर कल्पना के वाग्जाल मे उलझे रहते है वे सच्चे साहित्यकार नही है। वे ऐसे साहित्य और साहित्यकारो को व्यर्थ समझते है। इसका कारण यह है कि ऐसे साहित्यकार दुनियाँ को कठिनाइयो का चित्रण न कर प्रेम के एकागी स्वरूप को लेकर ही चलते है और प्रेम ही जीवन का सव कुछ नही है। फिर ऐसा साहित्य हमारी अनुभूतियो को तीव्र नही करता। अनुभूतियो को तीव्र वही साहित्य करेगा जो युग की समस्याओ को लेकर चलेगा, जो जनता-जनार्दन के सुख-दु ख को ही अपना लक्ष्य वनायेगा, जो राजनीति का पथ-प्रदर्शन करेगा, उसका मुखापेक्षी न होगा। प्रेमचन्द ने कहा है—"वह (साहित्य) देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई ही नही है, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती चलने वाली सच्चाई भी है।" (साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ १५) क्योंकि "साहित्य का उद्देश्य जीवन

के आदर्श को उपस्थित करना है, जिसे पढ कर हम जीवन मे कदम-कदम पर आने वाली कठिनाइयो का सामना कर सकें । अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले तो ऐसे साहित्य से लाभ क्या ? जीवन की आलोचना कीजिए, चाहे चित्र खीचिये, आर्ट के लिये लिखिये, चाहे ईश्वर के लिए मनोरहस्य दिखाइये, चाहे विश्वव्यापी सत्य की तलाश कीजिए—अगर उसमे हमे जीवन का सच्चा माग नही मिलता तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नही । साहित्य न चित्रण का नाम है, न अच्छे शब्दो को चुनकर सजा देने का, न अलकारों से वाणी को शोभायमान बना देने का । ऊँचे और पवित्र विचार ही साहित्य की जान है । ('साहित्य मे ऊँचे विचार की आवश्यकता' पृष्ठ २८५)

इस से पता चलता है कि प्रेमचन्द साहित्य मे कोरी कलावाजी को पसन्द नही करते थे, जीवन की अभिव्यक्ति की पुकार ही उन्होने लगाई है । इसीलिये कला को वे उपयोगितावाद से जोडते थे । वे तो सौदर्य, प्रेम और आध्यात्मिक आनन्द को भी कला की उपयोगिता के अंतर्गत ही मानते थे । उन्होने वडे जोरदार शब्दो मे कहा है—"मुझे यह कहने मे हिचक नही कि मै कला को भी उपयोगितावाद की तुला पर तोलता हूँ । निस्सदेह कला का उद्देश्य सौंदर्य-वृत्ति की पुष्टि करना है और वह हमारे आध्यात्मिक आनन्द की कुजी है । पर ऐसा कोई रुचिगत मानसिक तथा आध्यात्मिक आनन्द नही जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो ।" (साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ ११) वे उन सौंदर्यवादियो में नही जो रोम के नीरू की तरह घर में आग लगने पर उस ओर से उदासीन रह कर चैन की वशी वजाते रहते है । वे तो सुन्दरता की भी कसौटी

बदलने को तत्पर होते है। उन्होने कहा है—"हमे सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढग की थी। हमारा कलाकार अमीरो का पल्ला पकडे रहना चाहता था, उन्ही की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलम्बित था और उन्ही के सुख-दु ख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वद्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अत पुर और बंगलो की ओर उठती थी—कला नाम था और अब भी है—सकुचित रूप पूजा का, शब्द योजना का, भाव-निबंधन का। उसके लिये कोई आदर्श नही, जीवन का कोई ऊँचा उद्देश्य नही, भक्ति, वैराग्य, आध्यात्म और दुनियाँ से किनाराकशी उसकी सब से ऊँची कल्पनाएँ है।" यह सब हमारी दृष्टि की सकीर्णता का दोष है पर "जब हमारा सौदर्य व्यापक हो जायगा। जब सारी सृष्टि उसकी परिधि में आ जायगी, वह किसी विशेष श्रेणी तक ही सीमित न होगा, उसकी उडान केवल बाग की चहार दीवारी न होगी, किन्तु वह वायु-मण्डल होगा जो सारे भूमण्डल को घेरे हुए है तब कुरुचि हमारे लिये सह्य न होगी, तब हम उसकी जडें खोदने के लिये कमर कस कर तैयार हो जायँगे।"(साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ १३–१४–१५)

इस प्रकार वे साहित्य को कबीर और तुलसी की साधना की दृष्टि से नापते है। वे उसको तप मानकर चलते है। जैसे सत-साहित्यकार नीति और धर्म को साहित्य से अलग वस्तु नही समझते थे वैसे ही प्रेमचन्द भी नीतिशास्त्र और साहित्य-शास्त्र का कार्य-क्षेत्र एक ही मानते हैं—"नीति-शास्त्र और साहित्य का कार्य-क्षेत्र है। केवल उनके रचना-विधान में अन्तर है। नीति शास्त्र भी जीवन

का विकास और परिष्कार चाहता है, साहित्य भी। नीति-शास्त्र का माध्यम तर्क और उपदेश है, वह युक्तियो और प्रमाणो से वुद्धि और विचार को प्रभावित करने की चेष्टा करता है। साहित्य ने अपने लिये मनोभावनाओं का क्षेत्र चुन लिया है। वह तत्वो को रागात्मक व्यजना द्वारा हमारे अन्तस्तल मे पहुँचाता है। उसका काम हमारी सुन्दर भावनाओ को जगा कर उन मे क्रियात्मक शक्ति की प्रेरणा देना है।" (साहित्य और मनोविज्ञान पृष्ठ १०३)

वहुधा वे लोग जो कला-कला के लिये के पक्षपाती है और कला को उपयोगिता से दूर रखना चाहते है कहा करते है कि यदि कला मे अनिवार्यत उपयोगिता का तत्त्व रखा जायगा तो कला प्रचारवादी हो जायेगी। प्रेमचन्द ऐसे लोगो से कहते है—"मेरा पक्का मत है कि परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सभी कलायें उपयोगिता के सामने घुटने टेकती है। प्रोपेगेंडा वदनाम शब्द है लेकिन आज का विचारोत्तेजक, वलदायक, स्वास्थ्यवर्द्धक साहित्य प्रोपेगेण्डे के सिवाए न कुछ है, न हो सकता है, न होना चाहिए और इस तरह के प्रोपेगेण्डे के लिये साहित्य से प्रभावशाली कोई साधन ब्रह्मा ने नही रचा वरना उपनिषद् और वाइबिल दृष्टातो से न भरे होते।" (फिल्म और साहित्य पृष्ठ ११८)

वे किसी भी ऐसे तर्क को सुनने के लिये तैयार नही थे, जो साहित्यकार को अपने कर्त्तव्य से हटा कर साहित्य को मनवहलाव का साधन वनाने को वाध्य करता हो क्योकि उन की दृष्टि मे "साहित्यकार का काम केवल पाठको का मन वहलाना नही है। यह तो भाटो और मदारियो, विदूषको और मसखरो का काम है। साहित्यकार का पद इससे कही

ऊँचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, इस में सद्भावो का सचय करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है—कम-से-कम उस का यही उद्देश्य होना चाहिए।" (उपन्यास पृष्ठ ५८)

उन्हो ने प्रगतिशील लेखक सघ के प्रथम अधिवेशन का सभापतित्व किया था। उस के सभापति-पद से दिये गये भाषण में उन्होने कहा था—"साहित्यकार या कलाकार स्वभावत प्रगतिशील होता है। अगर वह उसका स्वभाव न होता तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अपने अन्दर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। अपनी कल्पना म वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छन्दता की जिस अवस्था मे देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नही देती। इसीलिये वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओ से उस का दिल कुढता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओ का अत कर डालना चाहता है, जिस से दुनियाँ जीने और मरने के लिये इस से अच्छा स्थान हो जाये। यही वेदना और यही भाव उस के हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाये रखता है।" (साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ ६) समाज में समानता और भाईचारा ला कर सब को सुख पहुँचाने का प्रयत्न जो साहित्यकार न करे वह प्रेमचद की दृष्टि में प्रगतिशील नही है। उस का स्वभाव कुछ और ही प्रकार का मानना पडेगा। क्योकि सच्च साहित्यकार की (और सच्चा साहित्यकार ही प्रगतिशील होता है) "आत्मा अपने देश बन्धुओ के कष्टो से विकल हो उठती है और उस तीव्र विकलता मे वह रो उठता है, पर उस के रुदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का हो कर भी सार्वभौमिक रहता है।" (जीवन में साहित्य का स्थान पृष्ठ २५)

उपन्यास और कहानी

प्रेमचद हिंदी के सब से बड़े कथाकार थे । इस लिये उपन्यास और कहानी के सबध में उन के विचार बड़े काम के है । अपने उपन्यास और कहानी सबधी निवन्धो मे प्रेमचद ने इन धाराओ की परिभापा, उन के विषय, उन के चरित्र आदि पर विस्तार से विचार किया है । उपन्यास की परि-भाषा करते हुए उन्हो ने लिखा है—"मै उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उस के रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है ।" (उपन्यास पृष्ठ ४५) आगे उन्हो ने लिखा है कि "सब आदमियो के चरित्र में भी बहुत कुछ समानता होते हुए कुछ विभिन्नताएँ होती है । यही चरित्र-सबधी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व मे भिन्नत्व और विभिन्नत्व मे अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्त्तव्य है ।" (वही पृष्ठ ५४) ऐसे उपन्यास लिखने वाले की कल्पना-शक्ति और अनुभव-शक्ति दोनो विशाल होनी चाहिएँ । साथ-ही-साथ उस को उपन्यास की कला का अभ्यास भी होना चाहिए । जिस व्यक्ति मे अनुभव करने की शक्ति नही, जिस की आँखें खुली नही है वह कभी भी सफल उपन्यासकार नही हो सकता और अनुभव की शक्ति भी हो पर उसे उस अनुभव को प्रकट करना न आता हो तो वह असमर्थ हो कर जायेगा । जहाँ तक विषय का सबध है यदि उपन्यासकार सजग है तो उसे पग-पग पर विषय मिल सकते है । प्रेमचद ने स्वय लिखा है कि "रगभूमि" का बीजाकुर हमें एक अन्धे भिखारी से मिला जो हमारे गाँव मे रहता था ।" न केवल 'रंगभूमि' वल्कि उन के सभी उपन्यास उन के आस-पास के जीवन से लिये गये पात्रो और घटनाओ

ऊँचा है । वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, इस मे सद्भावो का सचय करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है—कम-से-कम उस का यही उद्देश्य होना चाहिए ।" (उपन्यास पृष्ठ ५८)

उन्हो ने प्रगतिशील लेखक सघ के प्रथम अधिवशन का सभापतित्व किया था । उस के सभापति-पद से दिये गये भाषण मे उन्होने कहा था—"साहित्यकार या कलाकार स्वभावत प्रगतिशील होता है। अगर वह उसका स्वभाव न होता तो शायद वह साहित्यकार ही न होता । उसे अपने अन्दर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी । अपनी कल्पना म वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छन्दता की जिस अवस्था मे देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नही देती । इसीलिये वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओ से उस का दिल कुढता रहता है । वह इन अप्रिय अवस्थाओ का अत कर डालना चाहता है, जिस से दुनियाँ जीने और मरने के लिये इस से अच्छा स्थान हो जाये । यही वेदना और यही भाव उस के हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाये रखता है ।" (साहित्य का उद्देश्य पृष्ठ ६) समाज मे समानता और भाईचारा ला कर सब को सुख पहुँचाने का प्रयत्न जो साहित्यकार न करे वह प्रेमचद की दृष्टि में प्रगतिशील नही है । उस का स्वभाव कुछ और ही प्रकार का मानना पडेगा । क्योकि सच्च साहित्यकार की (और सच्चा साहित्यकार ही प्रगतिशील होता है) "आत्मा अपने देश बन्धुओ के कष्टो से विकल हो उठती है और उस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उस के रुदन में व्यापकता होती है । वह स्वदेश का हो कर भी सार्वभौमिक रहता है ।" (जीवन मे साहित्य का स्थान पृष्ठ २५)

उपन्यास और कहानी

प्रेमचद हिंदी के सब से बड़े कथाकार थे । इस लिये उपन्यास और कहानी के संबंध में उन के विचार बडे काम के है । अपने उपन्यास और कहानी सबधी निबन्धो मे प्रेमचद ने इन धाराओ की परिभापा, उन के विषय, उन के चरित्र आदि पर विस्तार से विचार किया है । उपन्यास की परि-भाषा करते हुए उन्हो ने लिखा है—"मै उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उस के रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है ।" (उपन्यास पृष्ठ ४५) आगे उन्हो ने लिखा है कि "सब आदमियो के चरित्र मे भी बहुत कुछ समानता होते हुए कुछ विभिन्नताएँ होती है । यही चरित्र-सबंधी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व मे भिन्नत्व और विभिन्नत्व मे अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्त्तव्य है ।" (वही पृष्ठ ५४) ऐसे उपन्यास लिखने वाले की कल्पना-शक्ति और अनुभव-शक्ति दोनो विशाल होनी चाहिएँ । साथ-ही-साथ उस को उपन्यास की कला का अभ्यास भी होना चाहिए । जिस व्यक्ति में अनुभव करने की शक्ति नही, जिस की आँखे खुली नही है वह कभी भी सफल उपन्यासकार नही हो सकता और अनुभव की शक्ति भी हो पर उसे उस अनुभव को प्रकट करना न आता हो तो वह असमर्थ हो कर जायेगा । जहाँ तक विषय का सबध है यदि उपन्यासकार सजग है तो उसे पग-पग पर विषय मिल सकते है । प्रेमचद ने स्वय लिखा है कि "रगभूमि" का बीजाकुर हमे एक अन्धे भिखारी से मिला जो हमारे गाँव मे रहता था ।" न केवल 'रंगभूमि' वल्कि उन के सभी उपन्यास उन के आस-पास के जीवन से लिये गये पात्रो और घटनाओ

पर खडे है । प्रश्न है कि वह अपनी कथा को घटनाओ के सयोजन से किस प्रकार आगे बढाता है । प्रेमचन्द की सम्मिति मे "उपन्यासकार को अधिकार है कि वह अपनी कथा को घटना-वैचित्र्य से रोचक बनाये, लेकिन शर्त यह है कि प्रत्येक घटना असली ढाँचे से निकट सबध रखती हो, इतना ही नही बल्कि उस मे इस तरह घुल-मिल गई हो कि कथा का आवश्यक अग बन जाये, अथवा उपन्यास की दशा उस घर की सी होगी जिस के हर हिस्से एक दूसरे से अलग-अलग हों ।" (उपन्यास का विषय पृष्ठ ६८) इस के लिये लेखक मे कुशलता होनी चाहिए और "कुशल लेखक वही है जो यह अनुमान कर ले कि कौन सी बात पाठक स्वय सोच लेगा और कौन सी बात लिख कर स्पष्ट कर देनी चाहिए ।" (उपन्यास पृष्ठ ६६) इस में "कल्पना-शक्ति लेखक की बडी सहायता करती है । क्योकि वह कल्पना-शक्ति के सहारे कितने ही दृश्यो, दशाओ और मनोभावो का चित्रण कर सकता है, जिन का उसे प्रत्यक्ष अनुभव नही है ।" (उपन्यास का विषय पृष्ठ ६८)

विषय और घटनाओ की शृखला के बाद प्रेमचद ने उपन्यास के चरित्र-विकास पर प्रकाश डाला है । उन्हो ने चरित्र-विकास के महत्त्व को बताते हुए लिखा है कि "उपन्यास चरित्रो के विकास का ही विषय है । अगर उस में विकास-दोष है, तो वह उपन्यास कमज़ोर हो जायेगा । कोई चरित्र अन्त मे भी वैसा ही रहेगा जैसा वह पहले था—उस के बल-बुद्धि भावो का विकास न हो तो वह असफल चरित्र है ।" (उपन्यास का विषय पृष्ठ ७८) चरित्र-विकास की यह सफलता अनुभूति की गहराई पर निर्भर है । प्रेमचद ने बडे दर्द के साथ कहा है कि "आजकल उपन्यासो में गहरे भावो

के स्पर्श करने का मशाना बहुत कम रहता है। अधिकांश उपन्यास गहरे और प्रचड भावो का प्रदर्शन नही करते। हम आये दिन साधारण बातो मे उलझ कर रह जाते है। (वही पृष्ठ ७०) वस्तुत श्रेष्ठ उपन्यास वह है जो पाठको के मन म वही भाव उत्पन्न कर दे जो उसके रचयिता के मन मे उसे लिखते हुए जगे हो।

उपन्यासो क भविष्य के विषय मे प्रेमचद की भविष्य-वाणी है--"भविष्य मे उपन्यास मे कल्पना कम, सत्य अधिक होगा। हमारे चरित्र कल्पित न होगे बल्कि व्यक्तियो के जीवन पर आधारित होगे। किसी हद तक तो अब भी ऐसा ही होता है पर बहुधा हम परिस्थितियो का ऐसा क्रम बॉधते हैं कि अन्त स्वाभाविक होने पर भी वह होता है जो हम चाहते है। हम स्वाभाविकता का स्वॉग जितनी खूब-सूरती से भर सके, उतने सफल होते है लेकिन भविष्य मे पाठक इस स्वाँग से सतुष्ट न होगा। यो कहना चाहिए कि भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या किसी छोटे आदमी का। उसकी छुटाई-बडाई का फैसला उन कठिनाइयो से किया जायगा कि जिन पर उसने विजय पाई है। हाँ, वह चरित्र इस ढग से लिखा जायगा कि उपन्यास मालूम हो।" (उपन्यास का विषय पृष्ठ ७४)

कहानी के विषय म 'साहित्य का उद्देश्य' मे तीन लेख है। उपन्यासो की तरह कहानियो के विषय में भी अनेक उपयोगी बाते उन्होने कही है। उपन्यास और कहानी का अन्तर प्रेमचदने यो बताया है--"उपन्यास घटनाओ, पात्रो और चरित्रो का समूह है, आख्यायिका केवल एक घटना है। अन्य सब बाते उसी घटना के अन्तर्गत होती है।" (कहानी कला पृष्ठ ३७) प्रेमचद वर्तमान कहानी को प्राचीन

नीति कथाओ से अलग एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण के तत्वो से सयुक्त रचना मानते है। उनकी श्रेष्ठ कहानी की कसौटी है--"सब से उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।" (वही पृष्ठ ४५) इसका कारण यह है कि "अब कहानी का मूल्य उसके घटना-विकास से नही लगाते, हम चाहते है कि पात्रो की मनोवृत्ति स्वय घटनाओ की सृष्टि करे। घटनाओ का कोई स्वतन्त्र महत्व नही रहा। उनका महत्व केवल पात्रो के मनोभावो की दृष्टि से ही है।" (वही पृष्ठ ४७)

कहानी का प्रधान गुण क्या है? क्या उसे मनोरजक होना चाहिये? प्रेमचन्द का इस विषय मे स्पष्ट मत है कि 'यह तो सभी मानते है कि आख्यायिका का प्रधान धर्म मनोरजन है पर साहित्यिक मनोरजन वह है, जिससे हमारी कोमल और पवित्र भावनाओ को प्रोत्साहन मिले--इसमे सत्य, निस्स्वार्थ सेवा, न्याय आदि देवत्त्व के जो अश है, वे जाग्रत हो" (वही पृष्ठ ५१) कहानी में 'तत्व' की सत्ता वे खुले दिल से स्वीकार करते है। यदि कहानी में कोई ऐसी बात नही जो हमारी किसी भावना विशेष को जगावे तो वह कहानी व्यर्थ होगी। एक बात और है कहानी मे सीधी-सादी तथ्य-व्यजना भी काम की नही। उसे मानसिक द्वद्व पर अवलम्बित होना चाहिए। इसी से पाठक को सच्ची तृप्ति मिल सकती है। उच्चकोटि की कहानी में वार्तालाप द्वारा ही पात्रो की मनोदशा की व्यजना होनी चाहिए और वार्तालाप भी स्वाभाविक हो। ऐसा न हो कि वह कृत्रिम जान पडे।

उपन्यास और कहानी के प्रसग में आदर्श और यथार्थ

का भी प्रश्न प्रेमचन्द ने उठाया है। इस विषय मे प्रेमचन्द समन्वयवाद के पक्षपाती है। प्रेमचन्द ने 'उपन्यास' नामक लेख मे कहा है—"वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते है जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया है। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते है। आदर्श को सजीव बनाने के लिये यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। यथार्थवाद हमारी आख खोल देता है, तो आदर्शवाद हमे उठाकर किसी मनोरम स्थान मे पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्श मे यह गुण है वहाँ यह शका भी है कि हम ऐसे चरित्रो को न चित्रित कर बैठे जो सिद्धान्तो की मूर्तिमात्र हो—जिनमे जीवन न हो।" परन्तु प्रेमचन्द का यथार्थ नग्न अश्लीलता वाला वह यथार्थ नही है जो डी० एच० लारेस या उसके ही जैसे अन्य यौन-विकारो को लेकर उपन्यास लिखने वालो के द्वारा अपनाया गया है। प्रेमचन्द का यथार्थ है—समाज की इकाई व्यक्ति का, फिर भले ही वह किसी वर्ग का हो, वर्तमान समाज व्यवस्था म पिसते जाना दिखाने वाला। उस घृणित यथार्थ की तो प्रेमचन्द ने वडी निन्दा की है। उन्होने 'साहित्य की नई प्रवृत्ति' नाम के लेख मे लिखा है—"कोई आजाद प्रेम के नाम से, कोई पतितो के उद्धार के नाम से कामोद्दीपन की चेष्टा करता है, और सयम और निग्रह को दकियानूसी कहकर मुक्त विलास का उपदेश देता है। उसे गुप्त से गुप्त प्रसगो के चित्रण मे जरा भी सकोच या झिझक नही होती। इन्ही रहस्यो को खोलने मे ही शायद उसके विचार मे समाज का वेड़ा पार होगा। व्रत और त्याग जैसी चीज़ की उसकी निगाह मे कुछ भी महिमा नही है। नही, वल्कि वह व्रत, त्याग और सतीत्व को ससार के लिये घातक समझता है। उसने वासनाओ को वेलगाम छोड़ देने

मे ही मानव जीवन-का सार समझा है। हक्सले और डी० एच० लारस और डिकोबरा आदि, अग्रजी साहित्य के चमकते हुए रत्न माने जाते है, लकिन इनकी रचनाए क्या है ? केवल उपन्यास रूपी कामशास्त्र।" साहित्य में असुन्दर का प्रवश होना चाहिए पर केवल इसलिये कि सुन्दर को और भी सुन्दर बनाया जा सके। अन्धकार की अपेक्षा प्रकाश ही ससार क लिय ज्यादा कल्याणकारी सिद्ध हुआ है।" प्रेमचन्द का झुकाव आदर्श की ओर अधिक है इसलिय कुछ विद्वान् उन्हें आदर्शवादी मानते है। हलाँकि, जैसा स्वय प्रेमचन्द ने अपने लिए लिखा है, वे 'आदर्शोन्मुख यथार्थवादी' है।

राष्ट्रभाषा

अब प्रेमचन्द के राष्ट्रभाषा सम्बन्धी विचारो का भी कुछ परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए। प्रेमचन्द साहित्य के द्वारा वही कार्य कर रहे थे जो गाधी जी राजनीति द्वारा कर रहे थे। गाधी जी ने जिस उदारता से हिंदू-मुस्लिम समस्या का हल भाषा की एकता में ढूंढ लिया था वैसे ही प्रेमचद ने भी दोनो सप्रदाय के लोगो को भाषा की एकता के लिये प्रेरित किया था। दूसरी बात यह है कि अग्रज़ी भाषा के आधिपत्य के कारण लोगो के हृदय मे अपनी सस्कृति के प्रति जो घृणा थी उसे मिटान का एकमात्र साधन राष्ट्रभाषा का होना था। प्रेमचन्द ने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास के चतुर्थ उपाधि वितरणोत्सव के अवसर पर जो भाषण दिया था उसमें राष्ट्रभाषा की समस्याओ पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उन्होने कहा है कि अंग्रेज़ी के प्रभुत्व को हटाने का अर्थ है आधी पराधीनता का नाश। वे कहते है—"सभ्य जीवन क हर एक विभाग में अंग्रेजी भाषा ही मानो हमारी छाती पर मूँग दल रही है। अगर आज इस प्रभुत्व को हम तोड सके तो पराधीनता का आधा

बोझ हमारी गर्दन से उतर जायगा।" आगे उन्होंने राष्ट्र-भाषा के स्वरूप की विवेचना करते हुए इसी भाषण मे बताया है—"इसे (राष्ट्रभाषा को) हिंदी कहिए, हिंदुस्तानी कहिए या उर्दू कहिए, चीज एक है। नाम से हमारी कोई बहस नही। ईश्वर भी है, जो खुदा है और राष्ट्रभाषा में दोनो को समान रूप से स्थान मिलना चाहिए। अगर हमारे देश म ऐसे लोगो की काफी तादाद निकल आये, जो ईश्वर को 'गॉड' कहते है, तो राष्ट्रभाषा उन का भी स्वागत करेगी। जीवित भाषा तो जीवित देह की तरह बराबर बनी रहती है। शुद्ध हिंदी तो निरर्थक शब्द है। जब भारत शुद्ध हिंदू होता तो उस की भाषा शुद्ध हिंदी होती। जब तक यहाँ मुसलमान, ईसाई, पारसी, अफगानी सभी जातियाँ मौजूद है, हमारी भाषा भी व्यापक रहेगी। अगर हिंदी भाषा प्रान्तीय रहना चाहती है और केवल हिंदुओ की भाषा रहना चाहती है तब तो वह शुद्ध बनाई जा सकती है। उस का अग-भग कर के कायापलट करना होगा।" एसी साहसपूर्ण बात प्रेमचद ने आज से २०-२५ वर्ष पहले कही थी। सच तो यह है कि प्रेमचद एक ऐसे व्यक्ति थे जो हर बात को बलौस कहना जानते थे। कबीर की तरह वे कौमियत या जातीयता के कट्टर पक्षपाती हिंदू-मुसलमानो का 'हिंदी'-'उर्दू' नामो पर झगडना बुरा बताते है। लेकिन 'हिंदी' नाम को स्वाभाविक बताते है क्योकि इग्लैड वाले इगलिश, फ्रॉस वाले फ्रेच, जर्मनी वाले जर्मन, फारस वाले फारसी, तुर्की वाले तुर्की, अरब वाले अरबी बोलते है तो फिर हिंद वाले हिंदी बोले तो स्वाभाविक ही है। उन्हो ने दोनो भाषाओ के एक करने का एक ही उपाय बताया था और वह यह कि सब की समझ मे आने वाले शब्द अधिकाधिक रहे। संस्कृत और अरबी

फारसी दोनो ही के शब्दो के प्रयोग के वे पक्षपाती है । उन्हो ने कहा है—"मेरे ख्याल मे तो भापा के लिये सब से महत्त्व की चीज है कि उसे ज्यादा-से-ज्यादा आदमी, चाहे वे किसी प्रान्त के रहने वाले हो, समझे, बोले और लिखे । ऐसी भाषा न पडिताऊ होगी और न मौलवियो की । उस का स्थान दोनो के बीच होगा ।" (कौमी भापा के विपय में कुछ विचार पृष्ठ १८०)

पारिभाषिक शब्दावली के विपय मे लोगो मे आज भी मतभेद है कि वह कैसे बने । प्रेमचद ने इस के लिये सब भाषाओ के विद्वानो के एक बोर्ड का सुझाव दिया है जो एक सामान्य शब्दावली का निर्माण कर सके । प्रश्न यह है कि ये पारिभाषिक शब्द कैसे बनाये जायेंगे ? कहाँ से वे लिये जायेंगे । प्रेमचद का मत है—"आज साइस की नई-नई शाखे निकाली जा रही है और नित नये शब्द हमारे सामने आ रहे है, जिन्हे जनता तक पहुँचाने के लिये हमें सस्कृत या फारसी की मदद लेनी पडती है । किस्से-कहानियो मे तो आप हिन्दुस्तानी जबान का व्यवहार कर सकते है वह भी जब आप गद्य-काव्य न लिख रहे हो । मगर आलोचना या तनकीद, अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन और अनेक साइस के विपयो में क्लासिकल भाषाओ से मदद लिये बगैर काम नही चल सकता । तो क्या सस्कृत और अरबी या फारसी से अलग-अलग शब्द बनाये जाये ? ऐसा हुआ तो एकरूपता कहाँ आई ? फिर तो वही होगा जो इस वक्त हो रहा है । ज़रूरत तो यह है कि एक ही शब्द लिया जाये चाहे वह सस्कृत से लिया जाये या फारसी से, या दोनो को मिला कर कोई नया शब्द गढ लिया जाये ।" (वही पृष्ठ १९६) प्रेमचद की यह सम्मति किसी टिप्पणी की आवश्यकता नही रखती । राष्ट्रभाषा में

पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण का इस से उपयुक्त मार्ग दूसरा नही हो सकता । इसके साथ ही वे यह भी मानते है कि "भारतवर्ष मे ऐसी हिंदी बहुत सहज मे स्वीकृत और प्रचलित हो सकती है जिस मे संस्कृत शब्द अधिक हो ।" (उर्दू, हिंदी और हिंदुस्तानी पृष्ठ २१३)

राष्ट्रभाषा जिसे 'हिंदुस्तानी' नाम प्रेमचद ने दिया है, लिपि की समस्या के कारण सदा आगे बढने मे कठिनाई का अनुभव करती रही है । लिपि के बारे मे उनका विचार एक लिपि रखने का था । वे दोनो लिपियो का रखना छोटे स्वार्थ की बात बताते है । उन्होने लिखा है—"बंगला, गुजराती, तामिल, आदि अगर नागरी लिपि स्वीकार कर ले तो राष्ट्रीय लिपि का प्रश्न बहुत कुछ हल हो जायेगा और कुछ नही तो केवल सख्या ही नागरी को प्रधानत दिला देगी । और हिंदी लिपि सीखना इतना आसान है कि इस लिपि के द्वारा उन की रचनाओ और पत्रो का प्रचार इतना ज्यादा हो सकता है कि मेरा अनुमान है, वे इसे आसानी से स्वीकार कर लेंगे । हम किसी लिपि को मिटाना नही चाहते । हम तो इतना ही चाहते है कि अतर्प्रान्तीय व्यवहार मे नागरी हो ।" (राष्ट्र-भाषा हिंदी और उस की समस्याये पृष्ठ १६७)

राष्ट्रीय ऐक्य के लिये राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि का एक होना अत्यन्त आवश्यक है, इसी तथ्य को दृष्टि मे रख कर प्रेमचंद ने राष्ट्रभाषा हिंदी और देवनागरी लिपि का समर्थन किया था । उन दिनो गाँधी जी हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने चाहते थे क्योकि नाम पर झगड़ा था । प्रेमचद ने भी उस का नाम हिंदुस्तानी रखा है पर वे चाहते यही थे कि उस का नाम हिंदी रहे ।

एक और बडी भारी बात प्रेमचद ने राष्ट्रभाषा की समृद्धि के लिये कही है। वह है अतर्प्रातीय साहित्यिक आदान-प्रदान का आयोजन। यदि हमें समस्त देश को एक करना है, सास्कृतिक जागरण का सूत्रपात करना है, प्रातीयता की भावना को मिटाना है तो वह भाषा के आधार पर प्रान्त-निर्माण या एसेम्बलियो मे आनुपातिक दृष्टि से सीटें दे कर उस भावना को नही मिटाया जा सकता। इस के लिये समस्त प्रातीय भाषाओ के पारस्परिक आदान-प्रदान का अविलव प्रयत्न हो, यह प्रेमचद का स्पष्ट मत था। उन्हो ने कहा है—"यह कौन नही जानता कि भारत मे प्रातीयता का भाव बढता जा रहा है। इस का एक कारण यह भी है कि हरेक प्रात का साहित्य अलग है। यह आदान-प्रदान और विचार-विनिमय ही है, जिस के द्वारा प्रातीयता के सघर्ष को रोका जा सकता है। राष्ट्रो का निर्माण उस के साहित्य के हाथ मे है। यदि साहित्य प्रातीय है तो उस के पढने वालो मे भी प्रातीयता अधिक होगी। अगर सभी भारतीय भाषाओ के साहित्य-सेवियो का वार्षिक अधिवेशन होने लगे तो सघर्ष की जगह सौम्य सहकारिता का भाव उत्पन्न होगा और यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि साहित्यो के सन्नि-कट हो जाने से प्रातो मे भी सामीप्य हो जायेगा।"
(अतर्प्रान्तीय साहित्यिक आदान-प्रदान के लिये पृष्ठ २१९)

इस प्रकार प्रेमचद ने राष्ट्रभाषा की समस्या पर सास्कृतिक धरातल पर विचार किया है और यह कहना अत्युक्ति न होगा कि आज राष्ट्रभाषा के लिये जो कार्य हो रहा है उस की रूपरेखा बहुत कुछ प्रेमचद की ही विचार-धारा पर बनी है।

'साहित्य का उद्देश्य' मे जो निबंध संग्रहीत है उनके अतिरिक्त भी 'हंस' और 'जागरण' मे राजनीतिक विषयो पर उनकी जो टिप्पणियाँ है वे भी कम महत्व की नही है। उनमे देश-विदेश की राजनीतिक समस्याओ पर बडी मार्मिक उक्तियाँ है। वे प्रेमचन्द के सजग और जनप्रिय कलाकार के रूप को स्पष्ट करती है। वे बताती है कि सच्चा कलाकार किसी भी हलचल से निर्लिप्त नही रह सकता। यदि इन टिप्पणियो के आधार पर उनकी राजनीतिक विचार-धारा का दिग्दर्शन कराया जाय तो बहुत समय और स्थान अपेक्षित होगा। हम केवल यही कह सकते है कि इनमे वे साम्राज्य विरोधी और सामन्त विरोधी भावनाओ का ही व्यक्तीकरण करते रहे हैं। उदाहरण क लिये स्वराज्य का अर्थ वे यह बताते है--"स्वराज्य का अर्थ केवल आर्थिक स्वराज्य है। आज भारत का उद्योग-धधा पनप उठे, आज भारत के घर-घर मे खाने के लिये दो मुट्ठी अन्न, पहनने के लिये दो गज कपडा हो जावे, आज घर-घर मे केवल स्वदेशी वस्तु हो, अथका परिश्रम के स्थान पर थोडा विश्राम हो, जीवन में, कुछ कविता, कुछ स्फूर्ति, कुछ सुख मालूम पडे—तो कौन कल इस बात की चिंता करेगा कि भारत की पार्लियामेट में अग्रेज है या हिन्दुस्तानी।" (१७ अप्रेल १९३३ के जागरण में) आगे वे ८ जनवरी १९३४ के जागरण मे लिखते है--"हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नही है बल्कि सामाजिक जुए से भी, इस पाखडी जुए से भी, जो विदेशी शासन से अधिक घातक है।" धीरे-धीरे व राजनैतिक दृष्टि से रूस की साम्यवादी विचार-धारा की ओर मुडते चले गये है और आदर्शवादी

से यथार्थवादी होते गये हैं। किसी के कहने से नहीं, अपने अध्ययन और युग की समस्याओं के हल की दृष्टि से। अभिप्राय यह है कि वे राजनैतिक दृष्टि से भी प्रगतिशील रहे, साहित्य की दृष्टि से तो थे ही। ●

प्रेमचन्द का शिल्प-विधान और भाषा शैली

प्रेमचन्द ने साहित्य-स्रजन की दृष्टि से कितना महान् काय किया है, इसका अनुमान गत अध्यायो मे विवेचित उनके उपन्यासो, कहानियों और नाटको तथा निबन्धो से लग जाता है। वस्तुत प्रेमचन्द का जीवन इतना महान् था, उनका साहित्य-स्रजन का ध्येय इतना ऊँचा था कि उनकी हर रचना मे एक प्रबल आकर्षण और अद्भुत सौदर्य है। उनके विपुल साहित्य-भाडार को कुछ पृष्ठो मे पूरी तरह समझ लेना बड़ा दुस्तर कार्य जान पडता है। यही कारण है कि प्रेमचन्द को भिन्न-भिन्न लेखको ने अपने-अपने दृष्टिकोण से देखा है और अपने पक्ष का ऐसा समर्थन किया है कि जब पाठक उनके विचारो से निकटता प्राप्त करता है तो उसे यह साहस नही होता कि अविश्वास करे। तुलसीदास के राम की तरह 'जाकी रही भावना जैसी' के आधार पर प्रेमचन्द का साहित्य सब को अपनी-अपनी दृष्टि से महान् लगता है। उनकी महानता का इससे बडा प्रमाण दूसरा और क्या हो सकता है।

उनके शिल्प-विधान और भाषा शैली पर जब हमारी दृष्टि जाती है तो पता चलता है कि उनकी कथावस्तु फिर वह उपन्यास की हो या कहानी की, सब का आधार जीवन-सग्राम है। वे कथावस्तु की खोज के लिये एक सजग कलाकार की भाँति अपने आसपास की दुनियाँ को ही देखते है, बाहर से विषयो को लाकर रखना उनका स्वभाव नही

है। उन्होने जो बात 'रगभूमि' के सूरदास के विषय मे लिखी है कि उसकी प्रेरणा उन्हे अपने गाँव के एक अधे भिखारी से मिली। वही बात उनके सब उपन्यासो के बारे मे कही जा सकती है। उनके सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास लीजिय या राजनैतिक समस्या प्रधान उपन्यास, उनको पढ कर ऐसा लगता है कि प्रेमचन्द ने जो कुछ लिखा है अपने निजी अनुभव के आधार पर लिखा है। किसान, ज़मीदार, मज़दूर, पूँजीपति, साहूकार, पुलिस अफसर, चौकीदार, चपरासी, कारिन्दा, पटवारी, हरिजन, महाजन, दफ्तर के बाबू, कचहरी के मुशी और पेशकार, बुड्ढे, बालक, जवान आदमी, कुमारी कन्या, विवाहिता पत्नी, विधवा, वेश्या, रखैल और प्रेयसी, गरज यह कि हर वर्ग और हर अवस्था के पात्रो का चुनाव उन्होने आसपास के जीवन से किया है। गाँव और नगर दोनो स ही उन्होने अपनी कथाये चुनी है फिर भी गाँव उनकी क्रीडाभूमि है। शहर में वे एक देहाती की ही भाँति सैर-सपाटे के लिये गये है। देहाती की ही दृष्टि से उन्होने शहर को देखा है। इसलिये सहानुभूति उनकी शहरी पात्रो से नही है। गाँव के पात्रो को व इतना पसद करते है कि उनके दुर्गुणो के बावजूद वे उनको पाठक की सहानुभूति का पात्र बनाये रखते है। उनके उपन्यास और कहानियो मे गाँव के जो चित्र है वे इसके साक्षी है।

उनकी दृष्टि अपने युग से बाहर नही जाती थी। ऐतिहासिक कहानियो मे यदि उनकी दृष्टि अपने युग से बाहर गई भी है तो इसलिये कि राजपूतो और बुन्देलो का बलिदान अभी नया ही है पुराना नही। वे यथार्थवादी कलाकार थे अत सामाजिक समस्याओ और राजनैतिक समस्याओ को उन्होने एक तटस्थ दर्शक की भाँति देख कर

स्वीकार नही किया, वे उस के स्वय एक पात्र रहे है। उन्हो ने जो कथानक गढे है, उन का चित्रपट वडा विशाल है। वडे उपन्यासो मे तो स्पष्ट ही दो कथाएँ चलती है। 'प्रेमाश्रम','रगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्म भूमि' और 'गोदान' मे से हर उपन्यास मे दो समानान्तर कथाएँ है। इन कथाओ मे से एक का क्षेत्र गाँव रहता है और दूसरी का शहर। यदि एक ही स्थान की दो कथाएँ होती है तो उन मे दो वर्गों के आधार पर कथा वस्तुएँ चलने लगती है। 'रंगभूमि' में ऐसा ही हुआ है। 'रगभूमि' का गाँव शहर से मिला हुआ है, उस का ही एक अग समझिए। वहाँ के पण्डे, खोचे-वाले और सूरदास मानो निम्न वर्ग के हों और जानसेवक, राजा महेन्द्रसिह, विनय, सोफिया आदि अन्य मध्यवर्ग के। 'प्रेमाश्रम' मे वलराज और मनोहर को ले कर एक कथा है तो दूसरी ज्ञानशंकर और गायत्री को ले कर है। 'कर्मभूमि' में एक कथा गाँव के किसानो के साथ जुडी है, दूसरी शहर के अछूनो के साथ। 'गोदान' मे एक मेहता और मालती की कथा है और दूसरी होरी और धनिया की। 'कायाकल्प' में चक्रधर और मनोरमा की एक कथा है तो दूसरी रानी देवप्रिया की। यो एक साथ दो-दो उपन्यास इन वडे उपन्यासो में गुथे है। न केवल वडे पर 'सेवासदन', 'निर्मला,' 'गवन' आदि सामाजिक उपन्यासो में भी प्रेमचंद ने कथा को लम्बा किया है। 'सेवासदन' मे एक कथा सुमन और गजाधर की है तो दूसरी शान्ता और सदन की। 'निर्मला' में वावू नोताराम के वडे पुत्र मसाराम की मृत्यु के बाद उपन्यास को आग ले जाना ठीक नही जान पडता। ऐसे ही 'गबन' में कलकत्ते का प्रसग वैसे ही जोडा हुआ लगता है। अभिप्राय यह कि कथानक बहुत लम्बे है। और जव कथानक लम्बे है तो अधिकाश पात्रो को आत्महत्या करनी

ही पड़ेगी, अनावश्यक और अतिनाटकीय प्रसगो की योजना होगी ही, लम्बे-लम्बे भाषण दिलाये ही जायेगे । प्रेमचद जी मे भी ये दोष है । उन के अधिकाश पात्र गगा मैया की शरण लेते है । 'प्रतिज्ञा' मे वसन्तकुमार, 'सेवासदन' मे दारोगा कृष्णचन्द्र, 'प्रेमाश्रम' मे ज्ञानशकर आदि पात्र गगा मे डूब कर ही जन्म सफल करते है । कथानक की लम्बाई ही उन्हे भरती के लिये अवकाश दे देती है । 'प्रेमाश्रम' मे ईजादहुसैन और उन के यतीमखाने के वर्णन मे कई पृष्ठ रगे गये है और 'सेवासदन' मे हिंदू और मुसलमान म्युनिस्पलिटी के मेम्बरो की बहस ने दो अध्याय लिये है । इसी प्रकार 'रगभूमि' का सूरदास अधा होते हुए भी एक पैसे के लिये फिटनगाडी के पीछे भागता है पर कही ठोकर खा कर नही गिरता । 'कायाकल्प' मे अहिल्या गहनो मे लदी अमीर की कन्या होने पर भी नाली मे पड़ी मिलती है । 'कर्मभूमि' के सब पात्र एक साथ लखनऊ जेल मे मिल जाते है । ये सब बात प्रमचद के उपन्यासो में सामान्यत होती है । कही-कही इन की कल्पना बे-लगाम दौडने लगती है और वह ऐसी-ऐसी बात कर जाती है जो सभव नही है । उदाहरण के लिये 'निर्मला' के बाबू भालचन्द्र सिन्हा का यह वर्णन लीजिए—"ऐसा मालूम होता था कि काला देव है, या कोई हब्शी अफ्रीका से पकड़ कर आया है । सिर से पैर तक एक ही रग था । काला चेहरा इतना स्याह था कि मालूम न होता था कि माथे का अन्त कहाँ है और सिर का प्रारभ कहाँ । बस कोयले की एक मूर्ति थी ।" ऐसा ही एक प्रसग वह है जब 'कर्मभूमि' का अमरकान्त महन्त आशाराम गिरि के मदिर मे जाता है । वह देखता है—"बरामदे के पीछे कमरों मे खाद्य सामग्री भरी हुई थी । ऐसा मालूम होता था, अनाज, शाक-भाजी, मेवे, फल, मिठाई की मडियाँ है । एक पूरा कमरा तो

परवलो से भरा हुआ था । इस मौसम मे परवल कितने महँगे होते है पर यहाँ वह भूसे की तरह भरा हुआ था ।" उसके आगे वह दर्जी, सुनारो की कतारे, पच्चीस-तीस हाथी, चार पाँच सौ गाये-भैसे और ऐसी ही अनेक दूसरी चीजे देखता है ।" कथावस्तु के सगठन की दृष्टि से यह दोप है । साधारण नही, प्रेमचद जैसे कलाकार के लिये अक्षम्य । परन्तु यह क्यो हुआ ? हम इस के उत्तर में डाक्टर इन्द्रनाथ मदान के इस कथन को उद्धृत करते है—"यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रेमचद को कोई परपरा विरासत मे नही मिली, उन को अपना शिल्प-विधान स्वय गढ़ना पडा । अपने यौवन के आरम्भ काल में वे देवकीनन्दन खत्री तथा अन्य लेखको के जासूसी और अय्यारी के उपन्यासो को पढा करते थे । इस लिये यदि वे अपने पूर्ववर्ती लेखकों के प्रभाव को न छोड सके तो आश्चर्य करने की कोई वात नही है ।" (प्रेमचद एक विवेचन पृष्ठ १२९) इस के साथ ही जैसा हम इसी पुस्तक म एक बार कह चुके हैं, यह भी बात है कि अपने युग का सर्वाङ्गपूर्ण चित्र देने की प्रवृत्ति भी प्रेमचद के इस प्रकार की भूलो का कारण रही है । वे अपने पाठक से सब कुछ कह देने को बराबर उत्सुक रहते है ।

परन्तु जहाँ उन्हो ने सयम से काम लिया है, वहाँ कमाल कर दिया है । उनक वर्णनो को पढ कर उनकी पर्यवेक्षण शक्ति की प्रशसा करनी पडती है । 'शतरज के खिलाड़ी' कहानी में मुगल बादशाहो के अतिम दिनो का लखनऊ कैसा था यह देखिए—"वाजिदअलीशाह का समय था । लखनऊ विलासिता के रग मे डूबा हुआ था । छोटे-बडे, अमीर-गरीब, सभी विलासिता मे डूबे हुए थे । ससार में क्या हो रहा है इस की किसी को खबर न थी । बटेर लड़ रहे है, तीतरो की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है । कही चौसर बिछी

हुई है, पौ-बारह का शोर मचा हुआ है । कही शतरज का घोर सग्राम छिडा हुआ है । राजा से ले कर रक तक इसी धुन में मस्त थे । यहाँ तक कि फकीरो को पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न ले कर अफीम खाते या मदक पीते । शतरज, ताश, गजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलो को सुलझाने की आदत पडती है । ये दलीले जोरो के साथ दी जाती थी ।" यह तो सामूहिक वर्णन है, अब एक घर का चित्र लीजिए । यह घर नही है । 'रगभूमि' के नायक सूरदास की झोपडी है—"कैसा नैराश्यपूर्ण दारिद्र्य था । न खाट, न बिस्तर, न बर्तन-भाँडे । एक-कोने में एक मिट्टी का घडा था । जिस की आयु का कुछ अनुमान उस पर जमी हुई काई से हो सकता था । चूल्हे के पास हाँडी थी । एक पुराना चलनी की भाँति छिद्रो से भरा हुआ तवा, और एक छोटी सी कठौत और एक लोटा । बस यही उस घर की सारी सम्पत्ति थी । मानव लालसाओ का कितना सक्षिप्त स्वरूप ।"

प्रेमचन्द अपनी कल्पना शक्ति से जो वर्णन पात्रो या उनकी परिस्थितियो का करते है उस में नाटकीयता नही होती । वे आदि, मध्य और अन्त की दृष्टि से कथा का विभाजन करते थे और सीधी रेखा में बढते थे । वे उस सैलानी जीव की तरह थे जो कभी-कभी रास्ते के इधर के दृश्यो के साथ-साथ कुछ दूर के गाँवो का भी चक्कर लगा जाता है और फिर अपने रास्ते पर आ जाता है ।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द के चरित्र जैसा कि श्री जनार्दन प्रसाद झा द्विज ने कहा है—"घटनाचक्र में पड कर ही उन के पात्रो का चरित्र प्रस्फुटित होता है और पात्रो से ही घटनाओ की सृष्टि होती है ।" (प्रेमचन्द की उपन्यास

कला पृष्ठ ४६) उनके पात्र विभिन्न परिस्थितियो मे पड कर तदनुसार आचरण करते है। वे घटना जाल मे उलझते चले जाते है। अन्त मे या तो वे परिस्थितियो से लडते-लडते मर जाते है या उन पर विजय पा लेते है। उदाहरण के लिये 'निर्मला' की नायिका निर्मला मर मिटती है। पर 'सेवासदन' की 'सुमन' अपने को विजयी कर लेती है। 'रगभूमि' का सूरदास और 'गोदान' का होरी लडते-लडते अपने को बलि कर देते है पर 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर और 'कर्मभूमि' का अमरकान्त अपने उद्देश्य मे सफल होते है। लेकिन प्रेमचन्द के पात्र परिस्थितियो से लडते-लडते मरे या विजयी हो वे होते सब आदर्शवादी है। प्रमचन्द प्राचीन महाकाव्यकारो की भाँति आदर्श चरित्रो की कल्पना करते है, वे अपने पात्रो मे वीरता देख कर मुग्ध हो जाते है। अपने पात्रो को वे सदैव महान् देखने के अभ्यासी है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके पात्रो के जीवन मे सहसा परिवर्तन हो जाता है। परिवर्तन होना तो कोई बात नही है पर वे उस परिवर्तन का कारण भी नही देते। प्रेमचन्द ने इस विषय मे जो सफाई दी है वे कहते है—"कि मानव चरित्र न बिल्कुल श्यामल होता है न श्वेत। उसमे दोनो ही रगो का विचित्र सम्मिश्रण होता है। अनुकूल स्थितियो मे जो मनुष्य ऋषि तुल्य होता है। प्रतिकूल परिस्थितियो मे कही नराधम बन जाता है।" अपनी इसी धारणा के कारण उन्होने अपने पात्रो क जीवन में सहसा परिवर्तन करा दिया है। 'आत्माराम' कहानी का महादेव सुनार और 'शखनाद' कहानी का गुमान क्रमश. धूर्त से सत और आवारा से कर्मठ बन जाते है। उनकी कहानियों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं पर, उपन्यासो में भी उनकी कमी नही है। 'कर्मभूमि' में 'मुन्नी का

चरित्र इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। जो मुन्नी सतीत्व-भग की लज्जा के कारण अपने पति के साथ नही जाती वही अन्त में कछनी काछे हुए, चौडी छाती वाले एक जवान के साथ हाथ से हाथ मिलाकर कभी कमर पर हाथ रखकर, कभी कूल्हो को ताल से मटका कर, नाचने मे उन्मत्त दिखाई देती है। लेकिन इसी उपन्यास में अमरकान्त के चरित्र में जो परिवर्तन हुआ है वह स्वाभाविक है। प्रेमचन्द जी कभी-कभी अपने पात्रो की शील रक्षा के लिये दूसरे पात्रो का सहसा प्रवेश कराके अपना काम चलाते है। 'प्रेमाश्रम' में जब ज्ञानशकर कृष्ण बनकर राधा गायत्री को अपनी वासना-पूर्ति का साधन बनाना चाहते है तब विद्या का प्रवेश होने से गायत्री की पवित्रता की रक्षा होती है। ऐसे ही 'कर्मभूमि' मे जब अमरकात सकीना को साडी देने के लिये जाता है और प्रेम-प्रदर्शन करने को उद्यत होता है कि पठानिन द्वार खोल देती है। अपने आदर्शवाद के कारण ही प्रमचद पात्रो को विषम स्थिति में डालकर अकस्मिक ढग से उनकी शील रक्षा करते हैं। पात्रो के चरित्र के किसी अग को प्रमचद अधूरा नही छोडते। वे उनकी दूर्बलताये भी दिखाते है और सबलता भी। उनके पात्र सजीव व्यक्तित्व लिये है। स्त्री पात्रो में सुमन, जालपा, धनिया को आप भुला नही सकते तो पुरुष पात्रो में सूरदास, प्रेमशकर, अमरकात और होरी को भी आप सदा याद रखते हं। चरित्र का विकास उनके पात्र स्वय करते है। अधिकाश पात्र अपनी विशेषताओ का उद्घाटन बातचीत द्वारा करते है। उनकी बाह्य स्थिति और आन्तरिक मनोदशा दोनो का ही पता हम को उनके वार्तालाप स चलता है। कही-कही प्रेमचन्द स्वय भी उनके स्वभाव की विशेषताओ को प्रकट

कर देते हैं पर बडे ही कलापूर्ण ढग से । वे अवस्था, देश और काल के अनुसार ही पात्रो की बातचीत कराते है। होरी की गाय मरने पर दारोगा उसके भाई हीरा की तलाशी के लिये आता है । होरी उसे अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझता है । गाँव वाले उसकी कमज़ोरी से फायदा उठाते है । बटेश्वरी पटवारी, दारोगा से कहता है—'तलाशी लेकर क्या करेगे हुजूर उसका भाई आपकी ताबेदारी के लिय तैयार है ।'

दोनो आदमी अलग हट कर बाते करने लगे ।

'कैसा आदमी है ।'

'बहुत ही गरीब हजूर ! भोजन का ठिकाना नही ।'

'सच ?'

'हाँ, हजूर ईमान से कहता हूँ ।'

'अरे तो क्या एक पचासे का भी डौल नही ?'

'कहाँ की बात हजूर दस भी मिल जाये तो हजार समझिये । पचास तो पचास जन्म मे भी मुमकिन नही और वह भी जब कोई महाजन खड़ा हो जायगा ।'

दारोगा जी मे दया का सर्वथा अभाव न हुआ था । उन्होने एक मिनट तक विचार करके कहा—'तो फिर उसे सताने से क्या फायदा ? मैं ऐसो को नही सताता, जो स्वय ही मर रहे हो ।"

बटेश्वरी ने देखा, निशाना और आगे पडा बोले—'नही हजूर, ऐसा न कीजिये । नहीं फिर हम कहाँ जायेगे । हमारे पास दूसरी कौन सी खेती है ।'

'तुम इलाके के पटवारी हो जी, कैसी बाते करते हो ?'

'जब ऐसा ही कोई अवसर आ जाता है तो आपकी बदौलत हम भी कुछ पा जाते है । नही पटवारी को कौन पूछता है ।'

'अच्छा जाओ तीस रुपये दिलवादो । बीस हम दस तुम्हारे ।'

'चार मुखिया है, इसका तो ख्याल कीजिये ।'

'अच्छा आधे-आधे पर रखो और जल्दी करो ।'

बटेश्वरी ने झिंगुरा से कहा, झिंगुरी ने होरी को इश से बुलाया । अपने घर गये, तीस रुपये गिनकर उसके हव किये और एहसान से दबते हुए बोले—'आज ही का लिख देना । तुम्हारा मुँह देख कर रुपये दे रहा हूँ, तुम्हा भलमसी पर ।'

और होरी तो रुपये द देता परन्तु धनियाँ ने सब भण्ड फोड दिया । बोली—'हमे किसी से उधार नही लना । दमडी भी न दूँगी, चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक चढना पडे । हम बाकी चुकाने को पच्चीस रुपये माँगते किसी ने न दिये । आज अजुरी भर रुपये निकाल ठनाठन गिन दिये । मै सब जानती हूँ । यहाँ तो बाँट वख होने वाला था । सभी क मुँह मीठे होते । यह हत्यारे ग के मुखिया है या गरीबो का खून चूसने वाले । सूद-ब्या डेढी-सवाई, नजर-नजराना, घूँस-घाँस, जैसे भी, गरीबो लूटो ।'

एक साथ पुलिस, इलाके के पटवारी, मुखिया, निर किसान और गाँव की दुर्दशा सब का चित्रण इस कथोपक मे आ गया है । प्रेमचन्द की कला की जान ऐसे ही कथो कथन है ।

प्रेमचन्द की कला की सफलता बहुत कुछ उनकी भा शैली पर निर्भर है । प्रेमचद ने अपने उपन्यास अ कहानियो द्वारा भाषा की समस्या को सुलझा दिया है । उर्दू से हिंदी में आये थे अत आरम्भ म उनकी भाषा

उखडी-उखडी रही, उसमें उर्दूपन भी रहा पर जैसे-जैसे वे आगे वढते गये भाषा व्यवस्थित होती गई। उन की भाषा की सब स वडी विशषता यह है कि वह न तो सस्कृत-गर्भित है और न अरवी-फारसी से वोझिल। वह दोनो के वीच की है। आम लोगो की समझ मे आने वाली है। उन की भाषा का सामान्य रूप अह है—"मिस्टर 'अ' नौ वजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे वगीचे मे टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। मिस्टर 'व' को हुक्का पीने की लत थी, पर आजकल बहुत रात गये किवाड वन्द कर अँधेरे मे सिगार पीत थे। मिस्टर 'द', 'स' और 'ज' से उन के घर के नौकरो की नाक म दम थी लेकिन वे सज्जन आजकल 'आप' और 'जनाव' क वगैर नौकरो से वातचीत नही करते थे। महाशय 'क' नास्तिक थे—हक्सले के उगासक, मगर आजकल उनकी धर्म निष्ठा देखकर मदिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शङ्का लगी रहनी थी। मिस्टर 'ल' को कितावो से घृणा थी परन्तु आजकल वे वडे-वडे ग्रथ देखने मे, पढने मे डूबे रहते थे। जिससे वात कीजिये वह, नम्रता और सदाचार का पुतला वना मालूम देता था। शर्माजी वडी रात से ही वदमत्र पढने लगते थे और मौलवी साहव को तो नमाज और तलावत के सिवा और कोई काम न था।"

लेकिन जव वह प्रकृत्ति-चित्रण करते है या उनके पात्र वार्तालाप करते है तो उन की भाषा वदल जाती है। समय और व्यक्ति के अनुकूल ही उन की भाषा का रूप हो जाता है। पात्रो की भापा की उन की विशेषता यह है कि हिंदू पात्र सस्कृत गर्भित भाषा वोलते है लौर मुसलमान पात्र अरवी-फारसी मिश्रित। आरभिक कहानियो और 'सेवासदन' उपन्यास में ऐसे-ऐसे भी स्थल है, जहाँ उर्दू जानने वाले भी चक्कर खा जाते है। पर यह प्रवृत्ति पीछे उन्हो ने छोड दी।

मुसलमान पात्रो की भाषा का रूप साधारणतः यह रहता है—"जब से हुजूर तशरीफ ले गये मैं ने नौकरी को सलाम कर दिया। ज़िन्दगी शिकम पर्वरी (पेट भरने म) में गुज़री जाती थी। इरादा हुआ कुछ दिन कौम की खिदमत करूँ। उस का मकसद हिंद-मुसलमानो म मेलजोल पैदा करना है। म इसे कौम का सब से अहम मसला समझता हूँ। आप दोनो साहब अगर अंजुमन को अपने कदमो से मुमताज फरमाएँ तो मेरी खुशनसीबी है।" (प्रेमाश्रम पृष्ठ ३५०) ग्रामीण पात्रो की भाषाकी विशेषता यह है कि वह रहती तो खडी बोली है पर वे शब्दो का ग्रामीणीकरण कर देते है। जिससे वह उन के मख से अच्छी लगती है। कर्मभूमि' का एक पात्र कहता है—"फिर ऐसा कौन है, जो हम गरीबो का दुखदरद समझेगा। जो कहो कि नौकरी चली जाएगी तो नौकर तो हम सभी है। कोई सरकार का नौकर है, कोई रहीस का नौकर है।" (कर्मभूमि पृष्ठ ३५५) 'दुखदर्द' का 'दुखदरद' और 'रईस' का 'रहीस' शब्दो के ग्रामीणीकरण के ही उदाहरण है। घीसू, गुमान, वितान, झींगुर, होरी, धनिया, नोहरी, सलोनी आदि ग्रामीण पात्रो के नाम भी उन की भाषा के ही अनुरूप है।

जहाँ इन्हे प्रकृति चित्रण करना होता है या भावो का विश्लेषण करना होता है वहाँ उन की भाषा अलकृत और काव्यमय हो जाती है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और उदाहरण अलकार उन्हें विशेष प्रिय है। उदाहरण देखिये—

(१) ऊषा की लालिमा में, ज्योत्स्ना की मनोहर छटा मे, खिले हुए गुलाब के ऊपर सूर्य की किरणो से चमकते हुए तुषार बिन्दु मे भी वह सुषमा और शोभा न थी, श्वेत हिम मुकुटधारी पर्वतो मे भी वह प्राणप्रद शीतलता न थी,

जो बिन्नी अर्थात् विन्ध्येश्वरी के विशाल नेत्रो मे थी ।
('भूत' कहानी से)

(२) अरावली की हरी-भरी, झूमती हुई पहाडियो के दामन मे जसवत नगर यो सो रहा है जैसे बालक माता की गोद मे । माता के स्तन से दूध की धारे, प्रेमोद्गार से विकल, मीठे स्वरो मे गाती निकलती है और बालक के नन्हे-से मुख मे न समा कर नीचे बह जाती है । प्रभात की स्वर्ण किरणो में नहा कर माता का स्नेह-सुन्दर मुख निखर गया है और बालक भी, अचल से मुँह निकाल कर, माता के स्नेह-प्लावित मुख की ओर देखता है, हुमुकता है और मुस्कराता है, पर माता बार-बार उसे अचल से ढक लेती है कि कही से नज़र न लग जाए । ('रगभूमि' पृष्ठ ४५७)

मुहावरे और कहावते प्रेमचद की भाषा की दूसरी विशेषता है। यो तो कोई भी ऐसा स्थान न होगा, जहाँ वे मुहावरो का प्रयोग न करते हो पर कही-कही वे लगातार मुहावरो को लाते चले जाते है । मुहावरों के इस अधिकारपूर्ण प्रयोग से उन की भाषा का सौंदर्य और शक्ति कई गुनी बढ जाती है । सम्मिलित कुटुम्ब की एक स्त्री अपने आवारा देवर के बारे में कहती है—"सहते-सहते हमारा कलेजा पक गया । बेटे की जितनी पीर बाप को होगी, भाइयो को उतनी क्या, उस की आधी भी नही हो सकती । मै तो साफ कहती हूँ—गुमान का तुम्हारी कमाई में हक है उन्हे कचन के कौर खिलाओ और चाँदी के हिंडोले मे झुलाओ । हममे न इतना बता है और न इतना कलेजा । ('शखनाद' कहानी से) मुहावरो के साथ-साथ ही वे विचार कण भी महत्त्व के है जो नग की तरह भाषा को जगमगाते चलते है । 'सच्चा प्रेम सयोग में भी वियोग की मधुर

वेदना का अनुभव करता ह', 'कायरता भी वीरता की भांति सक्रामक होती है', 'विपत्ति में हमारा मन अन्तर्मुखी हो जाता ह', 'सतान का विवाहित देखना बुढापे की सब से बडी अभिलाषा हं', 'जहां अपने विचारो का राग हो वही घर है' जैसे वाक्य न जाने कितनी व्यजना से भरे होते ह । वे पात्रो के हृदय की ग न वृत्तियो को प्रकाश मे लाने मे बडे सहायक होते हैं ।

व्यग और परिहास उन की शैली की मुहावरो और सूक्तियो जैसी ही प्रमुख-विशेषता है । जहाँ कही अवसर मिलता है प्रेमचद बिना हास्य के चूकते नही । जीवन की कठिनाइयो ने उन्हें सब स्थलो पर हँसने की शक्ति दे दी थी । 'सेवासदन' मे सुमन जब वेश्यालय से निकलती है तो अबुलवफा की दाढी जलाकर कहती है—"क्या करूँ खुद पछता रहा हूँ । अगर मेरे दाढी होती तो आप को दे देती—क्यो नकली दाढियाँ भी तो मिलती है ?" ऐसे ही 'कायाकल्प' म झिनकू के ज्योतिषी बन कर आने पर मुशी वज्रधर जब उस का मजाक उडाते हुए कहते है कि तोद की कमी रह गई तो वह जवाब देता है—"सरकार, तोद होती तो आज मारा-मारा क्यो फिरता ? मुझे भी न लोग झिनकू उस्ताद कहते ? कभी तबला न होता तो तोद ही बजा देता, मगर तोद न रहने मे कोई हरज नही, यहाँ कई पडित बिना तोद के है ।"

जब वे व्यग करते और चुटकियाँ लेते है तब तो कमाल ही करते है—"इजीनियरो का ठेकेदारो से कुछ वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा मधुमक्खियो का फूलो से । यह मधु रस कमीशन कहलाता है । कमीशन और रिश्वत में बड़ा अन्तर है । रिश्वत लोक और परलोक दोनो का सर्वनाश कर देती

है । उस मे भय है, चोरी है, बदनामी है, परन्तु कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहाँ न मनुष्य का डर न परमात्मा का भय ।"

इस प्रकार प्रेमचन्द की भाषा शैली वडी प्रवाहपूर्ण, सरल, स्वच्छ, अलकृत और मधुर है । उसमें मानव-जीवन और प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव-व्यजना को मूर्त करने की शक्ति है । शब्दो का सुष्ठु प्रयोग, वाक्य विन्यास की चुस्ती, मुहावरे और कहावतो का समावेश, व्यग और विनोद की छटा उनकी सशक्त गद्य शैली के उपकरण है । उन्ही की भाषा को राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त होगा और वही आदर्श होगी । शिल्प-विधान और भाषा शैली मे उन्होने जिस अभिनव पथ का अनुसरण किया उस पर उनके वाद कोई न चल सक पर जब तक उनके आदर्शों पर चलने वाले कलाकार आगे नही आते, हमारी भाषा और साहित्य की परम्परा की रक्षा नही हो सकती । आज के हिन्दी कथाकार का सव से वडा काम ही यह है कि वह प्रेमचद के पथ पर चल कर हमारे युग को वाणी दे और हमारा मार्ग-दर्शन करे ।